किताब-महल

कामायनी

आलोचनात्मक अध्ययन

लेखक

रामरतन भटनागर

कि ता ब म ह ल

इलाहाबाद

विषय-सूची

१

'कामायनी' की पृष्ठभूमि

(अ) प्रसादजी का व्यक्तित्व

प्रसादजी हिन्दी के आधुनिक काव्य के सबसे प्रमुख व्यक्ति हैं। वह छायावाद के आदि पुरुष माने जाते हैं। लगभग तीस वर्ष तक उन्होंने हिन्दी के काव्य-साहित्य में योग दिया और उसे द्विवेदी-युग के साधारण धरातल से ऊपर 'उठा कर बहुत ऊँचे कल्पना और कला के गौरीशंकर पर खड़ा कर दिया। 'कामायनी' इन्हीं युग-कवि की अंतिम विभूति है। 'साकेत' और 'कामायनी' इस युग के दो सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य हैं जो रामचरितमानस के बाद हिन्दी महाकाव्य की परम्परा को आगे बढ़ाते हैं।

'कामायनी' को समझने के लिए सबसे पहले उसकी पृष्ठभूमि को समझना पड़ेगा। तभी हम उसका ठीक-ठीक मूल्यांकन कर सकेंगे। यह समझ लेना होगा कि कामायनी युग के एक विशिष्ट प्रतिभावान् विचारक कवि की सर्वश्रेष्ठ कृति है और इस महान् ग्रंथ के माध्यम से प्रसाद ने हिन्दी को बहुत कुछ दिया है। इसीलिए हम 'कामाथिनी' की पृष्ठभूमि पर बल देते हैं। इस पृष्ठभूमि के तीन अंग हैं। १—प्रसाद का व्यक्तित्व, २—प्रसाद की कविता; ३—प्रसाद का युग और उस युग की निष्ठा की प्रसाद पर प्रतिक्रिया। कामायनी की पृष्ठभूमि में हमें इन्हीं तीनों की विवेचना करनी होगी।

सबसे पहले हम प्रसादजी के व्यक्तित्व को लेंगे। प्रसादजी के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में भी थोड़ा जान लेना आवश्यक होगा।

उनका जन्म १८८६ ई० में काशी के प्रतिष्ठित सुँघनी साहू के घराने में हुआ। इस घराने में कई पीढ़ियों से सुरती और तम्बाकू का व्यापार चला आता था और स्वयं प्रसादजी के पिता ने इस व्यापार में बड़ी उन्नति की थी। सुँघनी साहू का घराना काशी के प्रतिष्ठित रईस घराने में से था। स्वयं काशीनरेश इसका सम्मान करते थे। मिलने पर 'जय महादेव' की अभ्यर्थना के साथ इस परिवार का सम्मान किया जाता। संक्षेप में प्रसाद के काव्य में जो रईसी, जो ऐश्वर्य, जो मादकता-अलसता और विलास के दर्शन होते हैं, उसके लिए हमें प्रसाद के इस कुल-गौरव को सामने रखना पड़ेगा। निराला आधुनिक काव्य के दूसरे गौरववान कवि हैं, परन्तु उनकी कविता सामान्य जन के संघर्षों को ही प्रकाशित करती है। उसमें न हाथीदाँत पर मीनाकारी की गई है, न कल्पना का ऐसा विलास है। इसका कारण यह है कि उनका जन्म गढ़ाकोला के एक मध्यवित्त घराने में हुआ। जैसा कुल-गौरव, जैसा राजसी ऐश्वर्य प्रसाद को मिला, वैसा उन्हें नहीं मिला। इसी से उनकी कविता उसी श्रेणी की नहीं जिस श्रेणी की प्रसाद की कविता है।

कुल का वातावरण रईसी का वातावरण तो था ही, उसमें साहित्य-प्रेम का भी थोड़ा बहुत स्थान रहा होगा। भारतेन्दु के समय से ही काशी के रईस साहित्य में योग देने को गौरव की बात समझते थे। प्रसादजी के घर पर भी कवि-मंडली जमती और समस्यापूर्ति और कवितापाठ का दौर चलता। ब्रजभाषा काव्य का दौरदौरा था। प्रसाद ने जिस समय काव्यरचना आरम्भ की, उस समय ब्रजभाषा काव्य का प्रचार था, उसी में रचना होती थी, खड़ी बोली कविता में ग्रहण की जाने लगी थी और सरस्वती (१६००) ने उसका प्रचार भी शुरू कर दिया था, परन्तु मैदान ब्रजभाषा के ही हाथ था। स्वयं काशी में भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद का काव्य एक महान् रूढ़ि बन गया था। यह काव्य ब्रजभाषा में था। इसकी अवहेलना प्रसाद के

लिए असंभव थी। अतः हम प्रसाद को प्रेम (शृंगार) और भक्ति की रचना से काव्य का आरम्भ करता हुआ पाते हैं। कदाचित् किसी समस्यापूर्ति की बैठक के लिए उन्होंने पहली कविता लिखी होगी। सत्रह वर्ष की आयु में उन्होंने 'भारतेन्दु' (काशी, जुलाई) में अपनी सबसे पहली रचना प्रकाशित कराई थी। वह यह है—

सावन आये वियोगन को तन
आली अनंग लगे अति तावन
तावन होय लगी अबला
तड़पै जब बिज्जु छटा छवि छावन,
छावन कैसे कहूँ मैं विदेस
लगे जुगुनू हिय आग लगावन
गावन लगो मयूर कलाधर
झाँपि कै मेघ लगे बरसावन

इसमें मालालंकार का प्रयोग है। जिस शब्द पर एक कड़ी समाप्त होती है, दूसरी कड़ी उसी शब्द से आरंभ होती है। इसी प्रकार का एक सरस्वती-वन्दना छंद निरालाजी सुनाया करते थे जो कदाचित् उनका पहला छंद था। शायद इससे अधिक पुष्ट। वास्तव में छाया-वाद की सभी महान् विभूतियों ने ब्रजभाषा काव्य से ही अपना कविकर्म आरंभ किया था। इस प्रारंभिक कविता (१६०६) से कामायनी (१९३६) तक पहुँचने में प्रसाद को काव्य और कला की बीसियों सीढ़ियां पार करनी पड़ीं। वे मूलतः विद्रोही रहे, परन्तु निराला की तरह उनके विद्रोह में कटुता नहीं रही। उनके सारे विद्रोहों, सारे कलागत आन्दोलनों के पीछे एक अभिजात्य है जो इतना आकर्षक है कि मन मुग्ध हो जाता है।

प्रसाद के इस अभिजात्य-पूर्ण व्यक्तित्व का वर्णन अत्यंत रोचक ढंग से राय कृष्णदास ने 'प्रसाद की याद' शीर्षक लेख में किया है।

'१६०६ के कार्तिकवाले (इन्हीं) पाँच दिनों में, संभवतः वैकुण्ठ-चतुर्दशी को, प्रसादजी ने गंगास्नान के उपरांत मेरे यहाँ आना नियत किया। कोई आठ बजे का समय रहा होगा। भजन, गान और रामायण की समवेत स्वरलहरी से वातावरण गुंजरित हो रहा था। धूप और अगरबत्ती की सुरभि अंतरिक्ष में घुलकर चारों ओर पवमान हो रही थी। सबेरे की सुहावनी पछिवाँ बयार सामने गंगा के पाट पर लहरियों की चुन्नट विरच रही थी। नाव पर मेला आ-जा रहा था और मैं उत्सुकता से उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। पाठकजी उन्हें लिये हुए पहुँचे। ठिगना गठा हुआ, गोरा भव्य शरीर। वह गुलाबी पीताम्बर पहने और उसी के जोड़ का उपरना ओढ़े थे। गले में एक फूल-माला पड़ी हुई थी। भव्य ललाट पर विभूति का उज्ज्वल त्रिपुण्ड् मुखमण्डल की प्रभा को और भी आलोकित कर रहा था। प्रसादजी की रूपनिकाई का क्या कहना! मेरा हृदय उस झाँकी से खिल उठा।

आज घरेलू वातावरण में उनके व्यक्तित्व का निकट परिचय मिला। सलीक़ा, तकल्लुफ़, नाज़-अंदाज, अदा और शिष्टता के पुंज, कुछ सकुचते से इस समवयस्क से दो ही चार बातों में प्रेम का नाता जुड़ गया। स्वभावतः हम लोगों की अधिकांश बातें साहित्य के संबंध में थीं। उसी से मैंने जाना कि हिन्दी साहित्य को बहुत बड़ी देन देना इस व्यक्तित्व ने ठान रखा है। ठान ही नहीं रखा है, उसकी क्षमता भी है इसमें। हिन्दी के परंपरा-मैदान में, उस समय जो कुछ भी थोड़ा घना था—निजी वा मँगनी लिया हुआ, उससे कुछ नवीन, कुछ अनूठा देने की भावना और संकल्प था उनमें। इसका कुछ आभास वह अपने 'तिलोत्तमा' चम्पू से दे चुके थे, जो उन्हीं दिनों प्रकाशित हुआ था" ('हिमालय', पुस्तक ८, सितम्बर १६४६)।

आगे चलकर प्रसाद की महत्ता में लिखते हुए यही लेखक कहते हैं—"प्रसादजी के इतने विराट् साहित्यिक होने का मुख्य गुर यही है

कि उन्होंने मार्ग खोजने में बहुत समय लगाया। कोई बौना साहित्यिक होता तो चंपू को ही नया पथ मानकर उसी को घिसता रहता, किन्तु प्रसादजी ने उस दिन तक चैन नहीं लिया जिस दिन उन्होंने अपना वास्तविक मार्ग न बना लिया।" इस उद्धरण से स्पष्ट है कि प्रसाद के तन में फूलों की सी कोमलता होते हुए भी उनके मन में इस्पात-जैसी दृढ़ता थी। इस दृढ़ता के कारण वे हिन्दी-साहित्य के कहानी, कविता और उपन्यास के क्षेत्रों में आमूल क्रांति कर सके। उनका सारा साहित्य ही प्रयोगात्मक साहित्य है, परन्तु उनके प्रयोग के तत्त्व प्रसाद की कविता और उनके भावुक व्यक्तित्व में इतने छा गये हैं कि दिखलाई ही नहीं पड़ते। जान पड़ता है, प्रारम्भ से ही प्रसाद एक ही भाँति प्रौढ़ रहे। परन्तु ऐसी बात है नहीं। इस उद्धरण से पता चलता है कि श्रेष्ठ कलाकार की भाँति प्रसाद अपनी कलाप्रवृत्तियों को बराबर विकास के पथ पर बढ़ाते रहे। वे बराबर प्रगतिशील रहे। संभ्रांत कुल में उत्पन्न होने के कारण जो अभिजात्य था, वह बराबर उनकी रचनाओं में उपस्थित है। प्रसाद की शैली में जो एक प्रकार की मादकता, एक प्रकार की निर्वैयक्तिकता, एक प्रकार का कला-संयम है, वह उनकी व्यक्तिगत चीज़ है। थोड़ी मात्रा में यह विशेषताएँ पंत में भी मिलती हैं। इसी से प्रसाद का साहित्य जन-जन का साहित्य नहीं है, वर्ग-विशेष का साहित्य है। उससे आनन्द पाने के लिए एक विशेष प्रकार का अभिजात्य चाहिये।

छायावाद-काव्य में कवि के व्यक्तित्व को बड़ी प्रधानता मिली है। सारा काव्य ही कवि की व्यक्तित्व रुचि पर आश्रित है। अब तक हिन्दी काव्य में परम्परा और परिपाटी का बोलबाला था। छायावादी कवि अहम्‌वादी थे। वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता के दावेदार थे। 'पथ के दावेदार' (शरत् के एक उपन्यास का पात्र सव्यसाची) की तरह उन्होंने बौद्धिक, भाविक और कलात्मक स्वतंत्रता के पथ पर चलने का दावा सब के सामने रखा। इसी से उनके काव्य में परम्परा की

अपेक्षा व्यक्तिवाद का बोलबाला रहा। 'कलाकार स्वतंत्र है' यह भारतीय साहित्य के लिए बहुत ही क्रांतिकारी वाणी है। राजनैतिक नेता राजनीति और अर्थ की स्वतंत्रता की बात उठाते थे। छायावादी कवियों ने ये दोनों बंधन मानसिक बंधन से कम महत्वपूर्ण माने। उन्होंने अपने मानसिक क्षितिज को उन्मुक्त किया और पश्चिमी देशों के साहित्य और साहित्य-संबंधी सिद्धान्तों से सहारा लेकर अपने लिए एक विशिष्ट पथ तैयार किया। सच तो यह है कि छायावाद और उसके कवियों को हिन्दी साहित्य को रूढ़ि-मुक्त करने का श्रेय मिलना चाहिये।

प्रसाद का व्यक्तित्व उनके काव्य में पूर्णतया प्रतिबिंबित है। जो प्रसाद को जानते हैं, वे उनके व्यक्तित्व के सम्मोहन से परिचित हैं। रस-रूप में प्रसाद को उन्होंने ग्रहण किया है। वे कहते हैं, प्रसाद का काव्य उनके व्यक्तित्व का पूर्ण प्रतिबिंब है। नन्ददुलारे वाजपेई ने 'जयशंकरप्रसाद' में 'व्यक्तित्व की झलक' शीर्षक लेख में प्रसाद के व्यक्तित्व का रेखाचित्र उपस्थित करने का सफल प्रयत्न किया है।

ठिगना कद, गेहुँआ रंग, गले में रेशमी कुरता और रेशमी दुशाला। ऊँचा ललाट। होठों में मंद हँसी। आँखों में मादकता की लाली। स्निग्ध-स्वच्छ व्यवहार। प्रसाद का प्रारंभिक जीवन चाहे ऐश्वर्य, प्रेम और विलास की जिस चुहल में कटा हो, प्रसिद्धि के बाद से वह हमारे सामने सुन्दर संयमित रूप में आते हैं। काशी के प्रतिष्ठित सुँघनी साहू के घराने के एकमात्र रत्न वे रह गये थे। कुटुम्ब का सारा मानापमान, दुःख-सुख ओढ़ कर अपने व्यवसाय को बढ़ा कर ऋणमुक्त होने में उन्होंने कितनी शक्ति लगाई। परन्तु फिर भी साहित्यिकों और रसिक मित्रों के लिए वे सहज-सुगम रहे, यह क्या कम बात है। दालमंडी में उनकी दूकान साहित्यिकों का अड्डा बन गई थी और नवयुग के नये गीतों में से कितने [illegible] गली में

सौन्दर्य और प्रेम के क्रिय-विक्रिय के तमाशों को देखते हुए उन्होंने गुनगुनाया होगा।

हिन्दी-काव्यधारा से पहली बार व्यक्तित्व का प्रकाशन 'छायावाद' काव्य में हुआ। सिद्धों की कविता (७५० ई०) से लेकर द्विवेदीयुग (१९२०) तक साहित्यकार और कवि सामान्य सत्य की बात कहते थे। वे सब के लिए गीत गाते थे, केवल अपने हृदय की अपनी अन्यतम भावनाओं का प्रकाशन उनके लिए अक्षम्य अपराध था। 'भणिति' (कविता के किसी चरण में उपनाम रखने की पद्धति) प्रारम्भिक काल से ही चली आती थी। कवि कोई बात कहकर अपने नाम की छाप उस पर लगा अपने कर्तव्य को समाप्त कर देता था। यही उसका कवि-कर्म था, न इससे कम, न इससे अधिक। इससे उसके अहम् मात्र का प्रकाशन होता था, या कर्त्ता-संबंधी गुत्थियाँ नहीं पड़ने पाती थीं। परन्तु कवि का मौलिक दृष्टिकोण भी उस युग में व्यक्तिगत नहीं माना जाता था। अतः काव्य में वैयक्तिकता का लगभग अभाव है। रीतिकाल का कवि 'राधा कन्हाई सुमिरन को बहानो है' कहकर अपनी अन्यतम, एकांतिक, गर्हित वासनाओं को भी लोकनायक कृष्ण और लोकनायिका राधा पर थोप देता था और स्वयं तटस्थ खड़ा रह कर नाम की 'छाप' भर देकर हट जाता था। सच तो यह है कि आधुनिक काव्य से इतर हिन्दी का सारा काव्य विशेष-विशेष सामाजिक भूमियों एवम् आन्दोलनों का प्रतिनिधित्व करता दिखाई पड़ता है। कवि का हृदय-मन जो अनुभव करता है उसे देने के लिए वह पागल हो उठा है।

१९वीं शताब्दी में हिन्दी कवि सामंतों, राजा-महाराजाओं और आश्रयदाता सेठों के दरबार से निकल कर सामान्य जनता के पास आया। कवि-सम्मेलन, प्रेस, पत्र-पत्रिकाएँ, प्रकाशन की सुविधाएं— इन बातों ने काव्य को सामाजिक भूमि से हटा कर वस्तुवादी बना दिया। जहाँ सामंतशाही थी, वहाँ व्यक्ति की क्या महानता थी! अब

इन नये आन्दोलनों के फलस्वरूप व्यक्ति की आत्मा मुक्त हो गई। द्विवेदीयुग आर्यसमाजी युग भी था। उस युग में आचार-नियमन एवं सामाजिकता की प्रधानता थी। व्यक्ति को निषेधों के बंधन ने जकड़ लिया था। नए काव्य (छायावाद) ने इस बंधन का विरोध किया। कवि ने बंधनों को तोड़ कर एक बन्धनहारा चिंतन एवं उत्तेजना का अनुभव किया। प्रकृति, मनुष्य, सुख-दुःख, जीवन के साथ एकात्म होकर, वाह्य जगत् में स्वयंनिष्ठ हो जब नया कवि हमारे सामने आया, तब हमें तो वह इतना नया-नया लगा कि हम उसका विरोध कर उठे। उसे 'छाप' का आग्रह नहीं था। जो कुछ वह लिखता था, वह अन्य से भिन्न होता था। छाप के बिना भी उसका व्यक्तित्व पहचान में आ सकता था। अतः नए छायावादी काव्य में व्यक्ति का निजी स्वर काव्य में स्वतंत्र होकर बोला। यही इस नये काव्य की शक्ति थी। कविता कवियों के लिए आत्मा की प्रिय वस्तु बन गई। कवि-कर्म व्यक्तिगत साधना हो गया। कवियों ने अपना भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व विकसित करने की बड़ी चेष्टाएँ कीं। वे सफल भी हुए।

प्रसाद का काव्य उनकी अपनी निजी साधना से शक्ति प्राप्त करता है, इसी से व्यक्तित्व भी। प्रसाद का ऐश्वर्य, उनका विलासमय भ्रूभंग, उनकी जीवन-मृत्यु के आर-पार देखने वाली अंतर्दृष्टि, उनका आनन्द, उनकी चुहलें, फिर उनकी गुरु-गंभीरता, ये सब प्रसाद के कवि-व्यक्तित्व के अंग हैं। इस व्यक्तित्व को समझे और सुलझाये बग़ैर हम 'आँसू', 'लहर' और 'कामायनी' को अस्पष्ट, रहस्यवादी या छायावादी कह देते हैं।

प्रसाद का व्यक्तित्व किस प्रकार उनकी कविताओं में प्रकाशित हुआ है, यह नीचे के उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है—

निज अलकों के अंधकार में तुम कैसे छिप पाओगे
इतना सजग कुतूहल, देखो, यह न कभी बन पाओगे :

आह, चूम लूँ जिन चरणों को चाँप चाँप कर उन्हें नहीं
दु:ख दो इतना, अरे अरुणिमा ऊषा सी वह उधर वही

(मादकता)

नवनील कुञ्ज है झीम रहे
कुसुमों की कथा न बन्द हुई
है अंतरिक्ष आमोद भरा
हिमकणिका ही मकरंद हुई
इस इन्दीवर से गंधभरी
बुनती जाती मधु की धारा
मन-मधुकर की अनुरागमयी
बन रही मोहिनी सी कारा

(कल्पना-विलास)

किस गहन गुहा से अति अधीर
झंझा-प्रवाह सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महासमीर
ले साथ विकल परमाणुपुञ्ज नभ, अनिल, अनल, क्षिति और नीर
भयभीत सभी को भय देता भय की उपासना में विलीन
प्राणी कटुता का बाँट रहा जगती को करता अधिक दीन
निर्माण और प्रतिपद विनाश में दिखलाता अपनी क्षमता
संघर्ष कर रहा था जब से, सबसे विराग, सब पर ममता
अस्तित्व चिरंतन धनु से कब यह छूट पड़ा है विषम तीर
किस लक्ष्य-भेद को शून्य चीर?

(चिंतन)

सूखी सरिता की शय्या,
वसुधा की करुण कहानी
कूलों में लीन न देखी
क्या तुमने मेरी रानी?

सूनी कुटिया कोने में
रजनी भर जलते जाना
लघु स्नेह भरे दीपक का
देखा हो फिर बुझ जाना

(लक्षणा-प्रियता)

प्रेम पवित्र पदार्थ, न इसमें कहीं कपट की छाया हो
इसका परिमित रूप नहीं जो व्यक्तिमात्र में बना रहे
क्योंकि यही प्रभु का स्वरूप है जहाँ कि सब में समता है
इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं
अथवा उस आनन्द भूमि में जिसकी सीमा कहीं नहीं

(आदर्शवाद)

धीरे-धीरे जगत चल रहा
अपने उस ऋजु पथ में,
धीरे-धीरे खिलते तारे
मृग जुतते विधुरथ में
अंचल लटकाती निशीथिनी
अपना ज्योत्स्ना शाली
जिसकी छाया में सुख पाये
सृष्टि वेदना वाली
उच्च शैलशृङ्गों पर हँसती
प्रकृति चंचला बाला,
धवल हँसी बिखराती अपनी
फैला मधुर उजाला

(प्रकृति-प्रेम और गीतात्मकता)

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद के कवि-व्यक्तित्व और उनके चरित्र

के कई अंगों का विशेष विस्तार उनके काव्य में मिलता है। मादकता, कल्पना-विलास, चिन्तन, लक्षणा-प्रियता, आदर्शवाद, प्रकृतिप्रेम और गीतात्मकता प्रसादजी के व्यक्तित्व के ऐसे अंग हैं जो उनके काव्य को विशिष्टता प्रदान करते हैं। सच तो यह है कि प्रसाद का काव्य इतना विशिष्ट था कि न उसका अनुकरण हो सका, न उसकी कोई परम्परा ही चल पड़ी। निराला और प्रसाद के काव्य में वैयक्तिकता की मात्रा इतनी अधिक है कि वे अपने काव्य के एकमात्र प्रतिनिधि हैं। पंत की कविता का सम-सामयिक काव्य पर बहुत प्रभाव पड़ा, परन्तु इन दो कवियों के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। अन्त में हम निराला की उन पंक्तियों के साथ इस प्रसंग को बंद कर देते हैं जिनमें उन्होंने प्रसाद के सौम्य, परन्तु क्रांतिकारी व्यक्तित्व को श्रद्धांजलि दी है—

तुम बसंत-से मृदु, सरसी के सुप्त सलिल पर
मंद अनिल से उठा गये हो कंप मनोहर,
कलियों में नर्तन, भौंरों में उन्मद गुंजन,
तरुण-तरुणियों में शतविधि जीवनव्रत-भुञ्जन,
स्वप्न एक आँखों में, मन में लक्ष्य एक स्थिर,
पार उतरने की संस्कृति में एक टेक चिर;
अपनी ही आँखों का तुमने खींचा प्रभात,
अपनी ही नई उतारी संध्या अलस-गात,
तारक-नयनों की अन्धकार-कुन्तला रात,
आई, सुरसरि-जल-सिक्त मन्द-मृदु वही वात,
कितनी प्रिय बातों में वे रजनी-दिवस गये कट,
अन्तराल जीवन के कितने रहे, गये हट,
सहज सृजन से भरे लता-द्रुम किसलय-कलिदल
जागे जगत के जल से वासन्तिक उत्पल !

('आदरणीय प्रसाद जी के प्रति' : अणिमा)

(आ) प्रसादजी की कविता

प्रसादजी की कविता की कहानी बड़ी लम्बी है। जैसा हम पहले कह चुके हैं, लगभग ३० वर्ष तक उन्होंने कविकर्म में योग दिया। १९०६ के लगभग (१७ वर्ष की आयु में) उनकी पहली कविता प्रकाशित हुई और तब से मृत्युशय्या (१९३६) तक वे बराबर रचना करते रहे। यह नहीं कि उनका काव्य मात्रा में बहुत अधिक है। निराला, पंत, प्रसाद में मात्रा में प्रसाद का काव्य ही सब से कम है। परन्तु वह आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रगति का अन्य कवियों के काव्य की अपेक्षा अधिक प्रतिनिधित्व करता है। काव्यक्रम के अनुसार उनकी रचनाएँ इस तरह हिन्दी संसार के सम्मुख आईं—करुणालय (गीतिनाट्य, १९१९) काननकुसुम (१९२२), प्रेमपथिक (१९१३), महाराणा का महत्व (१९१४), आँसू (१९२६), झरना (१९२७), लहर (१९३५), और कामायनी (१९३७) । इस बड़े रचना-काल को हम तीन कालों में विभाजित कर सकते हैं :

१—प्रारंभिक, प्रयोगात्मक काल (१९०६—१९१४)
२—आँसू-काल (१९१४—२६)
३—प्रौढ़ कविता-काल (१९२६—३८)

बीच-बीच में प्रसाद ने साहित्य के अन्य विभागों में अपनी प्रतिभा का योग दिया और जो रचनाएँ उन्होंने हिन्दी संसार के सामने रखीं, वे किसी भी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। साहित्य के प्रकार-भेद के अनुसार वे रचनाएँ ये हैं :

क—चम्पू : उर्वशी (१९०९), प्रेमराज्य (१९१०)
ख—नाटक : चन्द्रगुप्त मौर्य (१९१२), प्रायश्चित (१९१४), राज्यश्री (१९१५), विशाख (१९२१), अजातशत्रु (१९२२), जनमेजय का नागयज्ञ (१९२६), कामना (१९२७), स्कंदगुप्त विक्रमादित्य

(१९२८), एक घूँट (१९२४), चद्रगुप्त मौर्य (परिवर्द्धित, १९३१), ध्रुवस्वामिनी (१९३४)

ग—कहानी : छाया (१९१२), चित्राधार (१९१९), प्रतिध्वनि (१९२६), आकाशदीप (१९२९), आँधी (१९३१), इन्द्रजाल (१९३६)

घ—उपन्यास : कङ्काल (१९२९), तितली (१९३४), इरवाती (मृत्यु के समय अपूर्ण छोड़ा)

ङ—निबन्ध : काव्य और कला (अनेक समय पर प्रकाशित निबन्ध)

इस प्रकार हम देखते हैं कि कविता प्रसाद की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति होते हुए भी सब कुछ नहीं है। कहानी, नाटक और उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने क्रांतिकारी परिवर्तन किये हैं। वास्तव में उनकी प्रतिभा सार्वभौमिक रही है। परन्तु वे प्रथमतः कवि हैं। नाटकों, उपन्यासों और कहानियों में उनका कवि-रूप ही बार-बार उभर आता है।

प्रसाद के प्रारंभिक प्रयोगात्मक काव्य का संबन्ध 'इन्दु' (१९०९-१९१६, पुनः प्रकाशित १९२७) से है। यह एक मासिक पत्र था और इसे स्वयं कवि के आग्रह से उनके भांजे अंबिकाप्रसाद गुप्त ने काशी से निकाला था। आधुनिक हिन्दी साहित्य में नई कविता और कहानी के क्षेत्र में इसने इतना महत्वपूर्ण काम किया है कि साहित्य के इतिहास में इसका स्थान सदा के लिए सुरक्षित है। इस पत्रिका के सम्पादकीय प्रसाद ही लिखते थे, अतः काव्य के सम्बन्ध में प्रसाद की प्रारंभिक विचारधारा भी हमें यहीं मिल जाती है। पहली संख्या की प्रस्तावना में ही कवि ने इस सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया—"साहित्य का कोई लक्ष्य विशेष नहीं होता है और उसके

लिए कोई विधि का निबन्धन नहीं है, क्योंकि साहित्य स्वतंत्र प्रकृति सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है। वह किसी की परतंत्रता को सहन नहीं कर सकता। संसार में जो कुछ सत्य और सुन्दर है वही साहित्य का विषय है। साहित्य केवल सत्य और सौन्दर्य की चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और सौन्दर्य को पूर्ण रूप से विकसित करता है। आनन्दमय हृदय के अनुशीलन में और स्वतंत्र आलोचना में उसकी सत्ता देखी जाती है।" दूसरे वर्ष के पहले अंत में कवि का दृष्टिकोण और भी अधिक स्पष्ट हो गया है—"अधिकांश महाशय × × × कविता-मर्म समझने की बात तो दूर है, उस पर ध्यान भी नहीं देते। यह क्यों, छन्दविषयक अरुचि है। इसका कारण यह है कि सामयिक पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण करके जो समाज के भाव बदल रहे हैं, उनके अनुकूल कविता नहीं मिलती और पुरानी कविता को पढ़ना तो मानों महाद्वेष-सा प्रतीत होता है, क्योंकि इस ढंग की कविता बहुतायत से हो गई है × × ×। शृंगार रस की मधुरता पान करते-करते आपकी मनोवृत्तियाँ शिथिल हो गई हैं इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी, अपने को भुला देने वाली कविताओं की आवश्यकता है। अस्तु, धीरे-धीरे जातीय संगीतमयी वृत्ति स्फुरणकारिणी आलस्य को भंग करने वाली, आनन्द बरसाने वाली धीर-गंभीर पद-विक्षेपकारिणी, शांतिमयी कविता की ओर हम लोगों को अग्रसर होना चाहिये। अब समय दूर नहीं है। सरस्वती अपनी मलीनता को त्याग रही है, और प्रबलरूप धारण करके प्राभातिक ऊषा को भी लजावेगी, एक बार वीणाधारिणी अपनी वीणा को पंचम स्वर में ललकारेगी। भारत की भारती फिर भी भारत ही की होगी।"

ऊपर जो लिखा गया है उससे प्रसाद के काव्य पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। नई कविता के विषय में कवि के मन में कुछ निश्चित धारणाएँ हैं। यही आगे चल कर उसके काव्य में पल्लवित हुई हैं। ये इस प्रकार हैं—

(१) साहित्य का कोई लक्ष्य नहीं होता।

(२) साहित्य के लिए कोई विधि या बंधन नहीं है।

(३) साहित्य में सब से महत्वपूर्ण है साहित्यकार या कवि का व्यक्तित्व। इसी से काव्यकर्म कवि की साधना बन जाता है।

(४) साहित्य के विषय हैं—सत्य और सुन्दर।

(५) पाश्चात्य साहित्य और शिक्षा ने कविता के विषय में लोगों के मानदंड बदल दिये हैं। अब उसी के अनुरूप कविता होनी चाहिये।

(६) शृंगार-रसपूर्ण कविता (रीतिकाव्य) ने जनता की मनोवृत्तियों को शिथिल कर दिया। अतः नए काव्य को रीतिकाव्य का अनुकरण करना ठीक नहीं होगा।

(७) नई कविता के ये गुण होंगे :

(क) भावमयता (ख) उत्तेजना (ओज) (ग) आत्मविस्मरण (घ) संगीतमयता (ङ) आह्लादकता (च) शांतिमयता भारतीय काव्यपरंपरा से परिचित आलोचक यह समझ लेगा कि यह व्याख्या शतप्रतिशत क्रांतिकारी है। कम से कम रीतिकाव्य के वातावरण में इस नई कविता का बिगुल बजा देना बड़े साहस का काम था। वास्तव में मूल रूप से यह कविता रीतिकाव्य और द्विवेदी-युग के काव्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया की रूप में सामने आती है। रीतिकाव्य का एक विशेष लक्ष्य था—

आगे के कवि रीझिहैं तो कविताई
न तु राधा कन्हाई सुमिरन को बहानो है

मुख्य लक्ष्य था 'कविताई' (कवि-कर्म)। इसमें असफलता रही तो उसे भक्तिसाधना कह दिया। एक पंथ दो काज। द्विवेदीयुग की कविता का लक्ष्य था सुधार। अनेक नैतिक विषयों को कविता का जामा पहना दिया गया था। अतः कविता आह्लादिनी न रहकर 'जड़'-

मात्र रह गई थी। रीतिकाल के कवि के लिए बंधन ही सब कुछ थे। वह तो सारा साहित्य और शास्त्र अध्ययन कर तब इस क्षेत्र में आता था। पग-पग पर वह नियमों और परम्पराओं से बँधा हुआ था। कवि-समय, कवि-प्रसिद्धि, गुणदोष—सैकड़ों बंधन थे। द्विवेदीयुग ने इन बन्धन को तोड़ा, परन्तु उनकी जड़ता स्वयम् उनका सबसे बड़ा बन्धन बन गई! इसी से 'साहित्य के लिए कोई विधि या नियम नहीं है' सोलह-सत्रह वर्ष के युवक को बड़ी क्रांतिकारी खोज हुई। इससे भी बड़ी क्रांतिकारी खोज थी कवि के व्यक्तित्व के विषय में। रीतिकाल और द्विवेदी-युग में कवि का व्यक्तित्व मर गया था। अन्तिम चरण में अपना 'उपनाम' धर कर कवि जैसे अपने सारे व्यक्तित्व का बोझ भी सिर से उतार कर फेंक देता है। कोई भी उपनाम रख दीजिये, कविता की 'स्पिरिट' में कोई अन्तर नहीं आयेगा। इतना व्यक्तित्वहीन (Impersonal) यह काव्य था। धीरे-धीरे कविता लिखना 'कर्ममात्र' रह गया। कवि उस कविता को अपनी कहे, उसमें अपना व्यक्तित्व भर दे, अपने सुख-दुःख की बात करे, राधाकृष्ण के प्रतीकों को हटा दे, यह नई बात हुई। जहाँ नया (छायावादी) कवि शृङ्गार-रसपूर्ण कविता (रीति-काव्य) का विरोधी था, वहाँ उसे द्विवेदी-युग की कविता की जड़ता में प्राणहीनता दिखलाई पड़ती थी। इसके विरुद्ध उसने भाव (रस), उत्तेजना (ओज), संगीतमयता, शांति और आह्लाद को अपना लक्ष्य बनाया। रीति काव्य में तो इन प्रवृत्तियों के दर्शन भी न होंगे।

तीन और महत्वपूर्ण बातें इस कविता के विषय में कही गई हैं :

(१) कविता का विषय—सत्य और सुन्दर। ये दोनों शब्द इतने अस्पष्ट, इतने भ्रामक हैं कि इनकी आड़ में नया कवि सुन्दर रूपों और दार्शनिक गुत्थियों में उलझ कर रह गया।

(२) कविता का आदर्श—पश्चिमी साहित्य और इस साहित्य

की मान्यताएँ । स्पष्ट ही कवि का तात्पर्य अंग्रेजी स्वच्छंद काव्य (Romantic Poetry) था। कवि ने अपने ऊपर एक महान् आदर्श को ओढ़ लिया है—"सत्य को प्रतिष्ठित और सौन्दर्य को पूर्ण-रूप से विकसित करना।" वास्तव में सत्य को प्रतिष्ठित करना दार्शनिक का आदर्श है कवि का आदर्श नहीं। इसी तरह सौन्दर्य को पूर्ण रूप से विकसित करना कवि का आदर्श होते हुए भी बड़ा कठिन काम है। यह तो सन्त की तपस्या हुई।

(३) इस नई कविता की परख। प्रसाद ने इसके दो मापदंड माने हैं: (क) आनन्दमय हृदय (सहृदय रसिक) पर इस काव्य का जो प्रभाव पड़े, (ख) स्वतंत्र आलोचना (काव्य परिपाटियों और काव्य-सिद्धांतों को अलग कर दिया जाये, मुक्त हृदय से, निर्बंध रूप में कवि या आलोचक उसके प्रभाव की विवेचना करे।) १९०९-१० में कविता के सम्बन्ध में इतने स्वतंत्र, इतने प्रगतिशील विचार कदाचित् किसी के न रहे होंगे।

अतः स्पष्ट है कि अपनी काव्यरचना के ३-४ वर्ष बाद ही प्रसाद ने काव्य सम्बन्धी कुछ अत्यंत प्रगतिशील सिद्धांत बना लिये थे और इन्हीं के आधार पर उन्होंने नए काव्य की नींव डाली। पता नहीं, ये नए विचार उन्हें कहाँ से मिले। अंग्रेज़ी-बंगला साहित्य से उनका परिचय अवश्य था, परन्तु जिस स्पष्टता से यह विचार सामने रखे गये हैं, उनसे यह लगता है कि उन्होंने वासना-मूलक रीति-काव्य और गद्यात्मक जड़ द्विवेदी-काव्य के विरुद्ध अपने संस्कारों द्वारा इन्हें प्राप्त किया।

परन्तु कविता के सम्बन्ध में स्वतंत्र विचारक की दृष्टि से कुछ निश्चित सिद्धांत गढ़ लेना एक बात है, इसके अनुरूप काव्य-निर्माण बड़ी कठिन बात है। यह बात उस समय और भी कठिन हो जाती है जब इस नए काव्य की न कोई परम्परा थी, न कोई नमूना। इसीसे १९०९

से १६१४ तक हम कवि को प्रयोग करते हुए पाते हैं। 'इन्दु' की कविताएँ (१६०६—१६); काननकुसुम (१६११), प्रमपथिक (१६१३) और महाराणा का महत्व (१६१४) उनके प्रारम्भिक प्रयोग-मात्र हैं।

सबसे पहले प्रसाद ने भाषा ब्रजभाषा ही रखनी चाही। उस समय काव्य की लोकप्रिय भाषा वही थी। खड़ी बोली की कविता गद्यात्मक थी, रस का संचार वह नहीं कर पाई थी, अतः यह स्पष्ट था कि वह काव्यभाषा के रूप में इतनी सफल नहीं जितना ब्रजभाषा। उस समय का रसिकवर्ग यही सोचता था। 'इन्दु' और 'कानन-कुसुम' की अधिकांश रचनाएँ ब्रजभाषा में ही हैं। 'इन्दु' (१६०६) की दूसरी किरण में 'प्रेमपथिक' प्रकाशित हुआ। यह ब्रजभाषा में ही था। कुछ दिनों बाद इसे परिवर्द्धित करके स्वतंत्र रूप से पुस्तकाकार छापा गया। तब भी यह ब्रजभाषा में रहा। फिर इसे परिवर्तित और परिवर्द्धित कर खड़ी बोली में १६१३ ई० में सामने लाया गया। १९०५ के लगभग मूलरूप में ब्रजभाषा में लिखा जाकर यह इतना महत्वपूर्ण नहीं परन्तु १६१३ में जब यही खड़ी-बोली में प्रकाशित हुआ तो इसने समसामयिक काव्य में एक युग-परिवर्तन की सूचना दी। यह कथात्मक काव्य था। शायद अंग्रेज़-कवि गोल्डस्मिथ के Hermit से प्रभावित था, परन्तु विषय और उसकी निबंधता (treatment) दोनों मौलिक होने के कारण जनता का ध्यान उसकी ओर गया। इसमें कवि ने 'प्रेम' की एक अभिनव परिभाषा उपस्थित की—

> इस पथ का उद्देश्य नहीं है
> श्रांत भवन में टिक रहना,
> किन्तु चले जाना उस हद तक
> जिसके आगे राह नहीं

केवल इन्हीं दोनों पंक्तियों को सारे रीति-काव्य के वासनामूलक, शृंगार

के समकक्ष रख जा सकता था। कहाँ मृत्य, कहाँ स्वर्ग! आदर्श-शिथिल युग के लिए प्रसाद का 'प्रेमपथिक' नया संदेश लाया। प्रसाद के प्रारम्भिक काव्य से हमें उन विशेष प्रवृत्तियों का पता लगता है जो उनके काव्य की विशेषताएँ हैं :

(१) प्रकृति के सम्बन्ध में नया दृष्टिकोण—प्रसाद के प्रारंभिक काव्य की प्रगति प्रकृति की ओर थी, यह इन्दु : कला १, किरण ३ में प्रकाशित उनकी 'शारदीय शोभा' कविता से प्रगट होता है। काननकुसुम की अनेक कविताओं का विषय प्रकृति है जैसे 'प्रभातिक कुसुम', 'इन्द्रधनुष', 'चंद्रोदय', 'सन्ध्यातारा'। ये सब कविताएँ भाषा में हैं, परन्तु इन में नये स्वर स्पष्ट रूप से बोल रहे हैं। उदाहरण के लिए हम 'सन्ध्यातारा', को ले सकते हैं—

कामिनी चिकुर भार अति घन नील
तामें मणिसम तारा सोहत सलील
अनंत तरंग तुङ्ग माला विराजित
फेनिल गम्भीर सिंधु निनाद मोहित
हरि कूहू में नाविक जिमि भयभीत
पीय-पथ दर्शकहिं लखत सप्रीत
संसार-तरंग लीख भीत तिमि जन
निराश हृदय धारि संतापित मन
शांति निशा-महिषा को राजचिह्नरूप
तुमहिं लखत संध्यातारा शुभ भूप

इसमें जो कल्पनाजन्य विलास है, वह न रीति-काव्य में मिलेगा, न द्विवेदी-युग की वृत्तात्मक, जड़ कविता में। परन्तु प्रकृति-सम्बन्धी भावना का विशेष विकास खड़ी बोली की प्रारंभिक कविताओं में हुआ है। इन्दु : कला ४, खंड १, कि० १, १९१३ में 'भरत' शीर्षक कविता में प्रसाद 'हिमालय' का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

हिमगिरि का उत्तुङ्ग शृङ्ग है सामने,
खड़ा बताता है भारत के गर्व को
पड़ती इसपर जब माला रवि-रश्मि की
मणिमय हो जाता है नवल प्रभात में
बनता है हिमलता; कुसुम मणि के खिले
पारिजात का हो पराग शुचि धूल है
सांसारिक सब ताप नहीं इस भूमि में
सूर्यताप भी सदा सुखद होता यहाँ
हिमसर भी हैं खिले विमल अरविंद हैं
कहीं नहीं है शोच, कहाँ संकोच है
चंद्रप्रभा में भी गलकर बनते नहीं
चंद्रकांत से ये हिमखंड मनोज्ञ हैं

प्रसाद ने पहली बार प्रकृति को हृदय की स्वच्छंद भावनाओं के भीतर से देखा। अब तक प्रकृति प्रेमी-प्रेमिकाओं की क्रीड़ा-भूमि था। वह विलास-उपवन बनी हुई है। उद्दीपन विभाव के रूप में प्रकृति का वर्णन कवियों का प्रिय विषय था। परन्तु प्रेम के अतिरिक्त भी मनुष्य में कोई प्रवृत्ति हो सकती है; रीतिकाव्य के कवि इस बात को भूल गये थे। द्विवेदी-युग के कवियों ने प्रकृति को वस्तु-नाम-वर्णन-मात्र समझ लिया। उनके हृदय से प्रकृति का मेल नहीं हो पाया। प्रसाद में हम पहली बार मानव-हृदय और प्रकृति को अनेक परिस्थितियों में एकाकार होते पाते हैं। 'काननकुसुम'-संग्रह की 'प्रथम प्रभात' शीर्षक कविता में इस नई प्रवृत्ति का आभास मिलता है। कवि प्रकृति को अपने अन्यतम भावों के माध्यम से देखता है—

मनोवृत्तियाँ खग कुल-सी थीं सो रहीं
अन्तःकरण नवीन मनोहर नीड़ में
नील गगन-सा शांत हृदय भी हो रहा
बाह्य आंतरिक प्रकृति सभी सोती रही

स्पंदनहीन नवीन मुकुल! मन तुष्ट था
अपने ही प्रच्छन्न विमल मकरंद से
कहा अचानक किस मलयानिल ने तभी
(फूलों के सौरभ से पूर्ण लदा हुआ)
आते ही कर स्पर्श गुदगुदाया हमें,
खुली आँख, आनन्द दृश्य दिखला गया
मनोवेग मधुकर-सा फिर तो गूँज के
मधुर-मधुर स्वर्गीय गान गाने लगा
वर्षा होने लगी कुसुम मकरन्द की
प्राण-पपीहा बोल उठा आनन्द में
कैसी छवि ने बाल अरुण की प्रगट हो
शून्य हृदय को नवल राग रंजित किया
सद्यः स्नात हुआ फिर उसी तीर्थ में—
मन पवित्र उत्साहपूर्ण भी हो गया
विश्व, विमल आनन्द भवन-सा हो गया
मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था

'झरना' (१६२८) में प्रसाद की १६१४-१७ की कविताएँ संग्रहीत हैं। 'काननकुसुम', 'झरना', 'लहर' तीनों नाम कवि के प्रकृति-प्रेम का आग्रह करते हैं। 'प्रथम प्रभात' शीर्षक कविता इसमें भी है। कई नई प्रकृति-सम्बन्धी कविताएँ भी हैं। जैसे 'पावस प्रभात'—

क्लांत तारकागण की मद्यप-मण्डली
नेत्र-निमीलन करती है, फिर खोलती
रिक्त चषक-सा चंद्र लुढ़क कर है गिरा
रजनी के आपानक का अब अंत है
रजनी के रञ्जक उपकरण बिखर गये
घूँघट खोल उषा ने झाँका और फिर

अरुण अपांगों से देखा, कुछ हँस पड़ी
लगी टहलने प्राची प्रांगण में तभी

इस कविता में कवि ने 'मद्यप मंडली' का रूपक बाँध कर प्रभात में चंद्रतारा की अस्तव्यस्तता का वर्णन किया है, पर यहाँ उर्दू-फ़ारसी काव्य का प्रभाव खुल पड़ा है। दूसरे पद में कवि ने उषा-प्रसङ्ग को सुन्दर युवती के रूप में मूर्तिमान किया है जो रजनी के बिखरे उपकरण देख कर प्रसन्नता और ईर्ष्या से गर्वीले हैं। यह मूर्तिमत्ता (Personification) नये काव्य का प्राण है। धीरे-धीरे कवि की प्रकृति-प्रेम की कविताओं में ऐश्वर्य और विलास का समावेश हो जाता है, परन्तु रीतिकाव्य से अलग ढंग पर। 'होली की रात' शीर्षक कविता में कवि कहता है—

चाँदनी धुली हुई है आज
बिछलते हैं तितली के पंख
सम्हल कर मिलकर बजते साज
मधुर उठती है तान असंख
तरल हीरक लहराता शांत
सरल आशा-सा पूरित ताल
सिताबी छोड़ रहा विधु-कांत
बिछा है सेज कमलिनी जाल

इस कविता में अभिधा से अधिक लक्षणा का प्रयोग है। कवि कहना चाहता है—'आज चाँदनी इतनी उज्ज्वल है कि लगता है नहा कर आई हो, जैसे धुली हुई हो। यह चाँदनी ऐसी सुचिक्कण है कि तितली के पंख भी इसमें फिसल जायें। इस रात की नीरव में गीत-वाद्य ध्वनि की लहरें गूँज रही है। लगता है जैसे यह विश्व एक बड़ासा तरल-सा हीरा हो और उसमें उज्ज्वल, पारदर्शी लहरें उठ रही हों। ताल जल-पूरित है जैसे (कवि का) हृदय आशा से भरा हुआ है। चाँद से

किरणों की फुलझड़ी छूट रही है। ताल में कमलिनी का जाल बिछा है जैसे सेज बिछी हो।' कुछ अन्य कविताओं में कवि प्रकृति के पीछे छिपे हुए किसी रहस्य को खोलना चाहता है। 'झरना' में वह कहता है—

मधुर है स्रोत है, मधुर है लहरी
न है उत्पात, छटा है छहरी
मनोहर झरना
कठिन गिरि कहाँ विदारित करना
बात कुछ छिपी हुई है गहरी
मधुर है स्रोत, मधुर है लहरी

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस प्रारंभिक काव्य में कवि ने प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण में एक महान क्रांति उपस्थित कर दी है।

(२) नये विषय

(अ) अध्यात्म

नया युग आध्यात्मिक साधना का युग नहीं था, परन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अध्यात्म इस युग की कविता का अत्यंत लोकप्रिय विषय रहा। युग की साधारण प्रवृत्ति से यह बात इतनी विपरीत थी कि वर्षों तक नई कविता साधारण पाठक की समझ में नहीं आती थी। कवि ईश्वर-जीव के संबंध में जो कुछ कहता था, वह युग-प्रवृत्ति से इतना दूर पड़ता था कि उसकी खिल्ली उड़ाई जाने लगी। 'छायावाद', 'रहस्यवाद', 'रवि बाबू की जूठन' 'थोथा अध्यात्म' इत्यादि कहकर इस प्रकार का काव्य लांछित बना और लगभग एक युग यह लांछना बनी रही। थोड़ा बहुत अध्यात्म तो हिंदू-जीवन के साथ लगा हुआ है ही। परन्तु जिस रूप में यह अध्यात्म पहले प्रकाशित हुआ था, उसमें अध्यात्म जीवन-साधना था, वाग्छल नहीं। सिद्ध, संत, सूफ़ी और भक्त पहले साधक थे, फिर कवि। उनकी साधना ने उनके काव्य को विश्वास की दृढ़ भित्ति दी थी। उसे

अस्वीकार करना असंभव था। छायावादी कवि के जीवन के पीछे अध्यात्म-साधना नहीं हो सकती थी, यह स्पष्ट था। १६-१७ वर्ष की आयु के कवियों से अध्यात्म-साधना की आशा की भी नहीं जा सकती थी। फिर यह अध्यात्म, यह जीव-ब्रह्मवाद, यह रहस्यवाद, कहाँ से आया। प्रसाद के प्रारंभिक काव्य से इसकी बहुत कुछ गुत्थियाँ खुल जाती हैं।

रविबाबू की गीतांजलि (अंग्रेज़ी संस्करण, प्रकाशना तिथि १९११ ई०) ने सारे संसार का चकित कर दिया था और सारे देश के अध्ययन और प्रशंसा का विषय बन रही थी। १६१३ के लगभग प्रसाद के काव्य पर 'गीतांजलि' का प्रभाव पड़ने लगा। इससे पहले की कविताओं में प्रेम और प्रकृति के संबंध में कवि का नया दृष्टिकोण मिलता है, परन्तु अध्यात्म कभी कवि का विषय नहीं रहा। १६१३ की जुलाई और अगस्त की संख्याओं में 'नमस्कार' शीर्षक दो कविताएँ प्रकाशित हुईं। अंग्रेज़ी गीतांजलि को अतिम कविता से इनको प्रेरणा मिली जान पड़ती है। जिस बँगला गीत का यह रूपांतर है, वह है—

एकटि नमस्कारे

प्रभु, एकटि नमस्कारे

'प्रसाद' ने इस कविता के अध्यात्म-भाव को ग्रहण कर लिया, परन्तु इसे हिंदी चिंतना की भित्ति दे दी—

१—जिस मन्दिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है
जिस मन्दिर में रंक नरेश समान रहा है
जिसका है आराम प्रकृति कानन ही सारा
जिस मन्दिर के दीप इन्दु, दिनकर और तारा
उस मन्दिर के नाथ को
निरुपम निर्मम स्वस्थ को
नमस्कार मेरा सदा
पूरे विश्व गृहस्थ को

२—तप्त हृदय को जिस उशीरगृह का मलयानिल
शीतल करता शीघ्र दान कर शांति को अखिल
जिसका हृदय पुजारी है रखता न लोभ को
स्वयं प्रकाशानुभव मूर्ति देती न क्षोभ जो
प्रकृति सुप्रांगण में सदा
मधुक्रीड़ा कूटस्थ को
नमस्कार मेरा सदा
पूरे विश्व गृहस्थ को

'गीतांजलि' का एक गीत है—

जीवन जखन शुकाय जाय
करुना धाराय ऐसो

इससे यह कविता मिलाइये—

जब प्रलय का हो समय ज्वालामुखी निज मुख खोल दे
सागर उमड़ता आ रहा हो, शक्ति साहस बोल दे
ग्रहगण सभी हों केन्द्रच्युत लड़कर परस्पर भग्न हों
उस समय भी हम हे प्रभो! तव पद्मपद में लग्न हों
जब शैल के सब शृङ्ग विद्युतवृन्द के आघात से
हों गिर रहे भीषण मचाते विश्व में व्याघात से
जब घिर रहे हों प्रलयघन अवकाशगत आकाश में
तब भी प्रभो! यह मन खिंचे तव प्रेमधारा-पाश में
(इन्दु, फ़रवरी १९१४)

'काननकुसुम' और 'झरना' की कितनी ही कविताओं पर स्पष्ट या अस्पष्ट रूप में गीतांजलि का प्रभाव है। ऐसा कहने से हम प्रसाद की मौलिकता पर कोई आक्षेप नहीं करते। गुजराती, मराठी, पंजाबी, सिंधी और दक्षिण भारत की भाषाओं पर भी गीतांजलि का प्रभाव पड़ा है। 'गीतांजलि' की प्रसिद्धि ही ऐसी थी, उसकी शैली में कुछ

ऐसा चमत्कार था कि उसके प्रभाव से उस समय बच सकना असम्भव था। कहीं-कहीं तो रविबाबू की विचारधारा को उसी तरह अपना लिया गया, जैसे—

जब मानते हैं व्यापी जल, भूमि में, अनिल में,
तारा शशांक में भी आकाश में अतल में
फिर क्यों ये हठ है प्यारे मन्दिर में वह नहीं है
यह शब्द जो नहीं है उसके लिए नहीं है

इसकी तुलना अंग्रेज़ी गीतांजलि के ११वें गीत से की जा सकती है। इसी तरह इसी गीत के भाव को 'आदेश' शीर्षक कविता में कवि रख देता है—

प्रार्थना और तपस्या क्यों ?
पुजारी किसकी है यह भक्ति ?
डरा है तू निज पापों से,
इसी से करता निज अपमान !
दुखी पर करुणा क्षणभर हो,
प्रार्थना पहरों के बदले,
हमें विश्वास हो कि वह सत्य
करेगा आकर तव सम्मान

इन कविताओं में जो भावधारा बही है वह इस प्रकार है—"पूजा-तपस्या सब व्यर्थ है। जो इस सृष्टि में व्याप्त है, वही मनुष्य में भी व्याप रहा है। इससे सब से बड़ी पूजा-तपस्या यह है कि दीनदुखियों की सेवा की जाय। 'वह' केवल मन्दिर में हो, यह बात तो नहीं।

फिर वह मनुष्य (जीवात्मा) से भिन्न भी नहीं है, बहुत दूर भी नहीं। जब लोग कहते हैं कि मनुष्य वंचक है, अपदार्थ है, कंगाल है तो वे यह भूल जाते हैं कि गुप्त निधियों का रक्षक यक्ष ('कुछ नहीं') उनके पास खड़ा उनकी मूर्खता पर हँस रहा है। जब परमात्मा

पास है, तो उसके धन से आत्मा धनी बनी रहेगी। परन्तु उस यत्न के नैकट्य का परिचय पाना तो कठिन है। जब तक मन में 'कामना' है तब तक उसे कैसे पाया जा सकता है। कवि प्रार्थना करने बैठता है, परन्तु कामना के नूपुर की झंकार कान में गूँज जाती है और वह चमत्कृत हो जाता है ('अव्यवस्थित')। जब जीवात्मा इस 'कामना' के बंधन से ऊपर उठ जाता है तो वह दिव्यमिलन के आनन्द को पाने लगता है।" 'काननकुसुम' की अधिकांश प्रेम की कविताएं लौकिक प्रेम की कविताएँ हैं, परन्तु रविबाबू के प्रभाव से कवि कितनी ही कविताओं में लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक रूप देने की प्रवंचना में पड़ गया है। अतः दो पक्षों में घटाने के प्रयत्न के कारण अध्यात्म सम्बन्धी कितनी ही कविताएँ अस्पष्ट हो जाती हैं। यहीं से 'रहस्यवाद' का आरम्भ होता है। प्रसाद ने अपने निबन्धों में रहस्यवाद को 'भंगिमा' या एक शैली मात्र माना है। इन कविताओं के अध्ययन से उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। वे मूलतः 'रहस्य' या 'आत्मा-परमात्मा' के कवि नहीं हैं। परन्तु जब इस रूप में उनकी प्रसिद्धि हो गई तो वे चुपचांप इसे निभाते गये। प्रसाद मूलतः प्रेम, विलास और सौन्दर्य के कवि हैं। उन्होंने आनन्द के आधार पर मानव-जीवन के सुखों-दुखों की व्याख्या की है। वे कलाकार कवि हैं। परन्तु वे इस अर्थ में रहस्यवादी कवि नहीं जिस अर्थ में हम कबीर, मीरा और महादेवी को रहस्यवादी कवि कहेंगे। 'झरना' की एक कविता में आधुनिक रहस्यवाद का सर्वोत्तम चित्र है। कबीर, दादू और मीरा प्रभृति के काव्य में ऐसे चित्र मिलेंगे। आध्यात्मिक आनन्द के सुख का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

मिल गये प्रियतम हमारे मिल गये
यह अलस जीवन सफल सब हो गया

कौन कहता है जगत है दु:खमय
यह सरस संसार सुख का सिंधु है
इस हमारे और प्रिय के मिलन से
स्वर्ग आकर मेदिनी से मिल रहा;
कोकिलों का स्वर विपञ्ची नाद भी
चंद्रिका, मलयज पवन, मकरंद औ'
मधुप माधविका कुसुम से कुञ्ज में
मिल रहे सब साज, मिल कर बज रहे
आज इस हृदयाब्धि में, बस क्या कहूँ,
तुङ्ग तरल तरंग कैसी उठ रही

(मिलन)

यह स्पष्ट है कि यह आध्यात्मिक कविताएँ 'गीतांजलि' का प्रभाव ही सूचित करती हैं। इसके पीछे साधना का बल नहीं है। वैसे उपनिषदों और संतकाव्य में इस प्रकार की भावनाएं थीं। परन्तु उपनिषदों का प्रभाव ब्रह्मसमाज के माध्यम से 'गीतांजलि' पर पड़ चुका था। सन्तकाव्य (विशेषतः कबीर और दादू के काव्य की ओर हिन्दीप्रदेश का ध्यान एक दशक बाद गया)। वास्तव में छायावाद-काव्य के कई अंग हैं। उसके अध्यात्म पक्ष के काव्य का अपना विशेष स्थान है और उसकी परंपरा 'गीतांजलि' से पहले नहीं जाती। श्री राय कृष्णदास ने 'प्रसाद' के स्मरण को लिखते हुए लिखा है कि 'गीतांजलि' के प्रकाशन के कुछ दिनों बाद उसी से प्रभावित होकर उन्होंने कुछ गद्यगीत लिखे। बाद को ये गीत 'साधना' (१९१९) में प्रकाशित हुए। एक दिन वह प्रसादजी से मिलनें गये। उन्होंने इन्हें बहुत आग्रह के साथ उसी प्रकार के कुछ गद्यगीत सुनाये। राय कृष्णदास ने कहा—'इसी तरह के गीत मैंने लिखे हैं, सम्भव है तुम्हें सुनाये हों। यह मित्रों पर ही हाथ सफ़ा।' प्रसादजो अत्यंत सहृदय व्यक्ति थे। मित्र के बीच में उन रचनाओं को उन्होंने पढ़ने नहीं दिया। कुछ

रचनाओं को उन्होंने नष्ट कर दिया। शेष रचनाओं को उन्होंने पद्य का रूप दे दिया। यह कविताएं 'काननकुसुम' और 'झरना' की कविताएं हैं। इस उद्घाटन के बाद 'छायावाद' के अध्यात्म-पक्ष की कविताओं और 'रहस्यवाद' के सम्बन्ध में विशेष उलझन नहीं रह जाती। बाद की रहस्यात्मक कविताओं पर चाहे और-और प्रभाव पड़े हों, इसमें संदेह नहीं कि प्रारंभ से इस प्रकार की रचनाओं का सूत्रपात 'गीतांजलि' के कारण हुआ। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी काव्य को रविबाबू का ऋण स्वीकार करना पड़ेगा।

(ख) करुणा

जीव-ब्रह्म के रहस्यात्मक मिलन-वियोग के बाद भी छायावाद के कई नए विषय रह जाते हैं। इनमें एक महत्वपूर्ण विषय है करुणा या वेदना। प्रारंभ में इसका संबंध आध्यात्मिक भावना से ही था। करुणा के द्वारा ही भगवान भक्त के समीप आता है। एक ओर भक्त की विपद है, भक्त की दीनता है, दूसरी ओर भगवान की निःसीम करुणा। प्रसाद कहते हैं—

तुम्हारी करुणा ने प्राणेश
बना करके मनमोहन वेश
दीनता को अपनाया
उसी से स्नेह बढ़ाया
अलसता लता बढ़ चली साथ,
मिला था करुणा का शुभ हाथ

यह तो हुआ आधुनिक काव्य के करुणावाद या वेदनावाद का अध्यात्मपक्ष। परन्तु स्वयम् कवि के व्यक्तिगत दुःख-क्लेश और युग की पराजयपूर्ण मनोस्थिति भी इसके लिए उत्तरदायी है। प्रसाद को होश सँभालते ही दुःखों से पाला पड़ा। १२ वर्ष की आयु (१९०१) में वह पितृविहीन हो गये। चार वर्ष बाद (१९०४) उनकी स्नेहमयी माता

की भी मृत्यु हो गई। दो वर्ष बाद (१६०६) में उनके ज्येष्ठ भ्राता भी गोलोक को प्राप्त हुए। सारा व्यापार चौपट हो गया। सारा घर उजड़ गया। अनेक परिस्थितियों से लगते-झगड़ते अस्तित्व बनाये रखने का प्रश्न था। जब हम देखते हैं कि प्रसाद को तीन बार विवाह करना पड़ा, दो पत्नियों की मृत्यु उन्हें देखनी पड़ी, तो हम यह स्पष्ट देखते हैं कि कवि के जीवन का एक बड़ा भाग विपरीत भाग्यचक्र के बीच में से गुज़रा। इसीसे बुद्ध के क्षणिकवाद (या दुःखवाद) से उन्हें प्रेम हो गया और अपने नाटकों में उन्होंने बारबार इसी (करुणा) को समाधान के रूप में देखा। १६१३ में मानसिक संकटों से घबड़ा कर प्रसाद कहते हैं—

ये मानसिक विप्लव प्रभो जो हो रहे दिनरात हैं

(करुणा-क्रन्दन, अप्रैल, १९१३)

अगली ही संख्या में हम उन्हें वेदनात्मक, काव्य की ओर झुका पाते हैं। 'दलित कुमुदिनी' एक उदाहरण है। 'हृदयवेदना', 'निशीथमयी' 'एकांत में' आदि कविता अन्य उदाहरण हो सकती हैं। दुःख में भरे हुए कवि को सारा संसार ही छलावा (मृगमरीचिका) दिखलाई दिया। 'करुणापुञ्ज' कविता में वह कहता है—

क्लांत हुआ सब अंग, शिथिल क्यों वेष है
मुख पर श्रमसीकर का भी उन्मेष है
भारी बोझा लाद लिया, न सँभार है
छल-छालों से पैर छिले, न उबार है
चले जा रहे वेग भरे किस ओर को
मृगमरीचिका तुम्हें दिखाती छोर को
किन्तु नहीं हे पथिक! वहाँ जल है नहीं
बालू के मैदान सिवा कुछ भी नहीं

यहाँ 'छलछालों' और 'भारी बोझ' का जो उल्लेख है, वह कवि के जीवन की परिस्थिति का फल है, उसमें अध्यात्म साधना की कोई बात

नहीं है। परन्तु हिन्दी काव्य में अपनी बात कहने की तो परंपरा थी ही नहीं। फिर इतने अन्यतम ढंग से तो अपनी बात किसी ने कही भी नहीं थी। फल यह हुआ कि इस प्रकार की वेदनावादी कविताओं के पीछे भी अध्यात्म की प्रेरणा ढूँढ़ी जाने लगी और कवि को अस्पष्टता के दोष से लांछित माना गया।

(ग) प्रेम : लौकिक

अध्यात्म का अर्थ है पारलौकिक प्रेम। परन्तु लौकिक प्रेम भी कविता का एक महत्वपूर्ण विषय है। रीतिकाव्य में सामान्य रूप से प्रेम की चर्चा है। उसे प्रेम नहीं, 'रति' कहना चाहिये। उसमें स्त्री-पुरुष के अन्यतम संबंध को शास्त्र के माध्यम से देखा गया है। प्रसाद ने पहली बार लौकिक प्रेम का काव्य लिखा। अंग्रेज़ी के रोमांटिक कवियों में इस तरह के काव्य की परंपरा थी और पंत और प्रसाद इस परंपरा से प्रभावित हुए। वास्तव में प्रसाद सौन्दर्य, प्रेम और विलास के कवि हैं। विनोदशंकर व्यास ने इशारा किया है कि अपने तरुणाई के दिनों में 'प्रसाद' किसी को प्यार करते थे, जीवन भर वे उपेक्षित रहे और उनकी इस व्यक्तिगत असफलता का उनके वेदनावाद को गढ़ने में महत्वपूर्ण हाथ रहा है। जान पड़ता है १६१३ के लगभग यह प्रेम-चक्र आरंभ हुआ। इन्दु कला ४, खंड १, किरण ५ में उनकी एक ग़ज़ल 'भूल' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। इसमें उर्दू ढंग से प्रमो की असफलता और प्रेमिका की निष्ठुरता का वर्णन है—

सरासर भूल करते हैं उन्हें जो प्यार करते हैं
बुराई कर रहे हैं और अस्वीकार करते हैं
उन्हें अवकाश ही रहता कहाँ है मुझसे मिलने का
किसी से पूछ लेते हैं यही उपकार करते हैं
जो ऊँचे चढ़के चलते हैं वो नीचे देखते हरदम
प्रफुल्लित वृक्ष ही यह भूमि कुसुमागार करते हैं

न इतना फूलिये तरुवर, सुफल कोरी कली लेकर
बिना मकरंद के मधुकर नहीं गुञ्जार करते हैं
'प्रसाद' उसको न भूलो तुम, तुम्हारा जो कि प्रेमी है
न सज्जन छोड़ते उसको जिसे स्वीकार करते हैं

इसके बाद आँसू (१६२६) तक इन प्रेम-कविताओं की परंपरा बराबर चलती है। यही नहीं, लहर (१९३५) में भी इस प्रकार की कविताओं के दर्शन हो जाते हैं। प्रेम के साथ निराशा का अत्यंत निकट का संबंध है। अतः 'काननकुसुम' में ही प्रेम की पीड़ा के प्रति कवि की गहरी सहानुभूति प्रगट होती है। प्रेम की पीड़ा छायावादी काव्य का प्रिय विषय है और वह लौकिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों पर घटाई जा सकती है। कवि कहता है—

मैं तो तुमको भूल गया हूँ
पाकर प्रेममयी पीड़ा

उर्दू कवियों के काव्य में इस दुःखवाद की परम्परा है। प्रेमी से अधिक 'फ़ुरक़त' (वियोग) की घड़ियाँ प्रिय होती हैं। सच तो यह है कि प्रसाद के प्रेमकाव्य पर शैली और विचारधारा दोनों के विचार से उर्दू-फ़ारसी की कविता का गहरा प्रभाव है। इस प्रभाव को समझे बिना उसे भली-भाँति ग्रहण ही नहीं किया जा सकता। 'झरना' में वियोग-भावना अत्यंत बलवती है। कवि प्रेमिका की निष्ठुरता का वर्णन करते हुए नहीं थकता—

सुधा में मिला दिया क्यों गरल
पिलाया तुमने कैसा तरल
माँगा होकर दीन
कंठ सींचने के लिए
गर्म झील का मीन

निर्दय तुमने क्या किया ?
सुना था, तुम हो सुन्दर सरल !
(सुधा में गरल)

एक अन्य कविता में कवि बताता है कि अतिथि रूप में प्रेम चुप-चुप हृदय में घुस गया, परन्तु जान पड़ा वह 'नाहर' था, अतिथि नहीं था—

उसको कहते "प्रेम"
अरे, अब जाना
लगे कठिन नखरेख
तभी पहिचाना

कभी वह यह कह कर आश्वासन पा लेता है—'रे मन, न कर तू कभी दूर का प्रेम'। कभी प्रियतम को अपने हृदय की शुद्धता परखने का दावा करता है—

शुद्ध सुवर्ण हृदय है प्रियतम
तुमको शंका केवल है
(कसौटी)

कभी मिलन-क्षण की याद करता है—

नियत था—पर हम दोनों थे शान्त ।
वृत्तियाँ रह न सकीं फिर दान्त
कहा जब व्याकुल हो उनसे
"मिलेगा कब ऐसा एकान्त ?"

'होली की रात' शीर्षक कविता में कवि व्यंग करता है—उसके हृदय में जो होली जल रही है—

उड़ा दो मत गुलाल-सी हाय
अरे अभिलाषाओं की धूल,

और ही रंग नहीं लग जाय,
मधुर मंजरियाँ जावें भूल—
विश्व में ऐसा शीतल खेल
हृदय में जलन रहे, क्या बात !
स्नेह से जलती होली खेल,
बना लो, हाँ, होली की रात
(होली की रात)

एक अन्य कविता (उपेक्षा करना) में कवि स्पष्ट ही इस लौकिक प्रेम की बात कहता है—

किसी पर मरना यही तो दुःख है
'उपेक्षा करना' मुझे भी सुख है

'आँसू' इसी विरहजन्य वेदना का खंडकाव्य है। हिन्दी प्रेम-काव्य में इसका स्थान प्रमुख रहेगा। परन्तु यह प्रारंभिक काव्य में नहीं आता। यह स्पष्ट है कि लौकिक प्रेम प्रसाद की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति थी। उनकी प्रारंभिक आध्यात्मिक कविताएँ 'गीतांजलि' से प्रभावित हैं। परन्तु उनका प्रेम-काव्य उनकी अपनी चीज़ है। वह कवि का जीवन-इतिहास है। परन्तु पहले कुछ आध्यात्मिक गीतों से प्रभावित होकर जनता उसके लौकिक काव्य में भी पारमार्थिक अर्थ ढूँढ़ने लगी। फल यह हुआ कि कविता समझ में ही नहीं आई। इसमें प्रसाद का कोई दोष नहीं था। परन्तु इस अस्पष्टता ने नई कविता को उपहास का विषय बना लिया।

परन्तु प्रसाद के काव्य में विषय की नवीनता ही नहीं थी, विचार की नई रेखाएँ ही उन्होंने नहीं गढ़ीं, उन्होंने इन विचारों के प्रकाशन के लिए नई शैलियाँ और नए छन्दों का निर्माण किया। इस विषय में उनके प्रारम्भिक काल की कविताएँ और भी प्रयोगात्मक

हैं। शैली के विषय में दो विशेषताएँ हैं : १ कल्पना का आग्रह, २ लाक्षणिक प्रयोग।

१—कल्पना

१९०९ के लगभग प्रसाद ने 'कल्पना' शीर्षक एक कविता लिखी है। कविता ब्रजभाषा में है। कवि कल्पना के खेलों का वर्णन करता हुआ कहता है—

हे कल्पना सुखदान
तुम मनुज जीवन प्रान
तुम विशद व्योम समान
तव अन्त नर नहिं जान

अंत में वह कल्पना के आनन्द का आह्वान करता हुआ कहता है—

तव शक्ति कहि अनमोल
कवि करत अद्भुत खेल
कहि दृग स्वबिन्दु तुषार
गुहि दंत मुक्ताहार
तुम दान करि आनन्द
हिय को करहुँ सानन्द
नहिं यह विषम संसार
तहँ कहाँ शांति बयार

(कला १, किरण ५)

इसके बाद ही 'संध्यातारा' कविता में हम कवि के कल्पनाजन्य विलास का अद्भुत चमत्कार देखते हैं—

कामिनी चिकुर भार अति घन नील
तामें मणिसम तारा सोहत सलील
अनत तरंग तुङ्ग माला विराजित
फैनिल गम्भीर सिंधु निनाद बोहित

हरिकूहू में नाविक जिमि भयभीत
पीयपथ दृशर्कहिं लखत सप्रीत
संसार तरंग लखि भीन तिमि जन
निराशहृदय धरि संतापित मन
शांति निशा-महिषी को राजचिह्न रूप
तुमहि लखत संध्यातारा शुभ रूप

इसमें संध्यातारा को वेणी में गुँथी मणि, अनंत-तरंग सागर पर तैरता हुआ जहाज़ और निशा-महिषी का राजचिन्ह कहा है। पंत की 'पल्लव' की कविताओं में हम छायावादी कवियों के कल्पना-प्रेम का सबसे उत्कृष्ट प्रमाण पाते हैं। वहाँ तो कवि कल्पनाजन्य चित्रों का ढेर पर ढेर लगाता चला जाता है। इतना बड़ा यह ढेर लग जाता है कि मन थक जाता है। उन चित्रों के चमत्कार में मन भले हो खो जाये, आलम्बन का रूप इतना धुँधला पड़ जाता है कि उसके संबन्ध में कोई जिज्ञासा शांत नहीं होती। कवि 'बापू' (गांधीजी) पर लिखे, या 'संध्यतारा' पर, या 'शरद' पर एक ही तरह की उपमाएँ, एक ही तरह का कल्पना-छत्र, एक ही शब्दकोष। कल्पना के इस अतिरेक ने छाया-वाद-काव्य को खिलवाड़ बना दिया। अनुकरण करने वालों को यही चीज़ सबसे सरल लगी। फल यह हुआ कि छायावाद-काव्य में जितने कल्पना चित्र हैं, उतने एक हज़ार वर्ष तक चलते हुए सारे हिन्दी काव्य में नहीं मिलेंगे।

२—लाक्षणिक प्रयोग

प्रसाद के प्रारंभिक काव्य में ही विशिष्ट वाग्भंगिमा की ओर उनका आग्रह झलकता है। वास्तव में प्रसाद 'छायावाद' की व्याख्या करते हुए उसे अभिव्यंजना का एक रूप मात्र मान लेते हैं। उनके लिए यही उसका सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है। वे लिखते हैं—"ये नवीन भाव आंतरिक स्पर्श से पुलकित थे। आभ्यंतर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा वाह्य

स्थूल आकार में भी कुछ विचित्रता उत्पन्न करती है। सूक्ष्म आभ्यतर भावों के व्यवहार में प्रचलित पदयोजना असफल रही। उनके लिए नवीन शैली, नया वाक्यविन्यास आवश्यक था। हिन्दी में नवीन शब्दों की भंगिमा स्पृहणीय आभ्यांतर-वर्णन के लिए प्रयुक्त होने लगी।' इस प्रकार प्रसाद 'छायावाद' को प्रधानतः शब्द, शब्द-भंगिमा और शैली के क्षेत्र में एक क्रांति मानते हैं। इसे कविता का 'वाह्यांग' कहें तो भी कुछ अनुचित नहीं होगा। इसके चार अंग थे :

(१) नई पंदयोजना

(२) नई शैली

(३) नया वाक्य-विन्यास जिसमें सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास हो और जो भाव में एक तड़प उत्पन्न कर दे।

(४) आभ्यंतर भावों के लिए शब्दों की नवीन भंगिमा। प्रसाद ने छायावाद के इसी वाह्यांग की ओर अधिक बल दिया है। वे कहते हैं—'वाह्य उपाधि से हटकर अन्तरहेतु की ओर कवि-कर्म प्रेरित हुआ। इस नये प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए जिन शब्दों की योजना हुई, हिन्दी में वे पहले कम समझे जाते थे; किन्तु शब्दों में भिन्न प्रयोग से एक स्वतंत्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति है। समीप के शब्द भी उस शब्द विशेष का नवीन अर्थ-द्योतन करने में सहायक होते हैं। भाषा के निर्माण में शब्दों के इस व्यवहार का बड़ा हाथ होता है। अर्थ-बोध व्यवहार पर निर्भर करता है, शब्द-शास्त्र में पर्यायवाची और अनेकार्थवाची शब्द इसके प्रमाण हैं। इसी अर्थ-चमत्कार का महात्म्य है कि कवि की वाणी में अभिधा से विलक्षण अर्थ साहित्य में मान्य हुए। ध्वनिकार ने इसी पर कहा है—

प्रतीयमानं पुनरन्यदेववास्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्

अभिव्यक्ति का यह ढंग निराला है और अपना स्वतंत्र लावण्य रखता है। इसी लिए प्राचीनों ने कहा है—

मुक्ताफलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।
प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ॥

मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है वैसे ही कांति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है । इस लावण्य को संस्कृत साहित्य में छाया और विच्छित्ति के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया है। कुन्तक ने वक्रोक्तिजीवित में कहा है—

प्रतिभाप्रथमोद्भेद समये यत्र वक्रता ।
शब्दाभिधेययोरन्तः स्फुरतीव विभाव्यते ॥

शब्द और अर्थ की यह स्वाभाविक वक्रता विच्छित्ति, छाया और कांति का सृजन करती है । इसके वैचित्र्य का सृजन करना ही विदग्ध कवि का काम है ।"

अभिव्यक्ति के इस नये ढंग की प्रसाद ने प्राचीनों की उक्तियों के सहारे व्याख्या की है । उन्होंने बताया है, यह कोई नई वस्तु नहीं । भारतीय काव्य-परंपरा में बराबर इसका प्रयोग रहा है और आनंदवर्धन और कुन्तक जैसे आचार्यों ने साहित्य-शास्त्रों में इसकी व्याख्या की है । कवि अर्थ से कुछ अधिक प्रगट करना चाहता है । इसके लिए वह एक नई शैली पकड़ता है । अर्थ से अधिक यह जो है, इसे प्राचीनों ने 'लावण्य', 'छाया', 'विच्छित्ति', 'वक्रता', 'वैदग्ध मैत्री' नाम से प्रगट किया है । इसे ध्वनि भी कहते हैं । "यह ध्वनि प्रबंध, वाक्य, पद और वर्ण में दीप्त रहती है । कवि की वाणी में यह प्रतीयमान छाया युवती के लज्जा के भूषण की तरह होती है । ध्यान रहे कि यह साधारण अलंकार जो पहन लिया जाता है वह नहीं है, किन्तु यौवन के भीतर रमणी-सुलभ श्री की बहिन 'ह्री' है, घूँघट वाली लज्जा नहीं । संस्कृत साहित्य में यह प्रतीयमान छाया अभिव्यक्ति के अनेक साधन उत्पन्न कर चुकी है । इस दुर्लभ छाया का संस्कृत काव्योत्कर्ष-काल में

अधिक महत्त्व था। आवश्यकता इसमें शाब्दिक प्रयोगों की थी, किन्तु आन्तर अर्थ-वैचित्र्य को प्रगट करना भी इनका प्रधान लक्ष्य था। इस तरह की अभिव्यक्ति के उदाहरण संस्कृत में प्रचुर हैं। उन्होंने उपमाओं में भी आन्तरसारूप्य खोजने का प्रयत्न किया है। निरहङ्कार मृगांक, पृथ्वी गतयौवना, संवेदन मिवाम्बरं, मेघ के लिये जनपद-बधू लोचनैः पीयमानः या कामदेव के कुसुमशर के लिए विश्वसनीय मायुधं—ये सब प्रयोग वाह्य सादृश्य से अधिक आन्तर सादृश्य को प्रगट करने वाले हैं।" "इन अभिव्यक्तियों में जो छाया की स्निग्धता है, तरलता है, वह विचित्र है। अलंकार के भीतर आने पर भी ये उनसे कुछ अधिक हैं।" "छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भङ्गिमा पर अधिक निर्भर है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की निवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं।"

इस प्रकार के लाक्षणिक काव्य का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण 'आँसू' (१९२५, १९३३) है यद्यपि 'झरना' की कविता में १९१७-१८ के आसपास प्रसाद ने इस नई शैली का प्रयोग आरम्भ कर दिया था। ऊपर के उदाहरण से अस्पष्ट है कि प्रसाद के इस लाक्षणिक शैली के ये उपकरण माने हैं :—

(१) शब्दों के नवीन सार्थक प्रयोग

(२) (छायामयी वक्रता के लिए) सर्वनामों का प्रयोग जैसे 'वे' आँखें कुछ कहती हैं।

(३) वैदग्ध्यमय वाग्भंगी (शब्द और अर्थ की वक्रता) जिसके द्वारा अर्थवैचित्र्य और चमत्कार की सृष्टि हो।

(४) आन्तरस्वरूप प्रधान उपमाओं का प्रयोग। अलंकार के भीतर आने पर भी ये उपमाएँ उनसे कुछ अधिक हैं।

(५) प्रतीकों का प्रयोग। 'गीतिका' की भूमिका में निराला के काव्य की व्याख्या करते हुए प्रसादजी ने लिखा है कि प्रत्येक युग

की कविता अपने लिए अलग प्रतीक चुन लेती है। छायावाद-काव्य में प्रतीकों का प्रयोग इतना अधिक हुआ कि वह इस पृथ्वी की चीज़ ही नहीं रहा। अनेक नये प्रतीक आये। कुछ पुराने प्रतीक भी रहे। जैसे अभिसार, मिलन, विरह। सतंकाव्य में इनका प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। आत्मा-परमात्मा के मिलन-वियोग का वर्णन करते हुए कवि ने इसी प्रतीक शैली का सहारा लिया। 'इन्दु' (१६१४) में 'खोलो द्वार' शीर्षक उनकी एक कविता प्रकाशित हुई है—

शिशिर कणों से लदी हुई कमलो के भीगे हैं सब तार
चलता है पश्चिम का मारुत लेकर भी बरफ़ों का भार
भीग रहा है रजनी का भी सुन्दर कोमल कवरी-भार
गरम किरण सम कर से छूलो, खोलो प्रियतम खोलो द्वार
धूल लगी हैं काँटे जैसी पग-पग पर था दुःख अपार
किसी तरह से भूला भटका आ पहुँचा हूँ तेरे द्वार
डरो न प्रियतम धूलधूसरित होगा नहीं तुम्हारा द्वार
धो डाले हैं इनको प्रियवर इन आँखों के आँसू-धार

'संतकाव्य' 'भक्तकाव्य' और 'रीतिकाव्य' तीनों में इस अभिसार की परंपरा है। संतकाव्य में आत्मा-परमात्मा के प्रति अभिसार करता है। भक्तिकाव्य में राधा कृष्ण का अभिसार प्रिय विषय रहा है। रीतिकाव्य की तो केन्द्रीय भावना ही अभिसार है :

दृगन में भाले परै पगन में छाले परैं
तऊ लाल लालै परै रावरै दरस कै

यह भाव बार-बार रीति कविता में आता है। परन्तु प्राचीन काव्य में इस भाव को समझने में कोई दुविधा नहीं है। नए कवियों से इस 'अभिसार' की आशा नहीं की जाती है। वे तो रीतिकाल के विरोध में एक नई काव्यरीति खड़ी कर रहे थे। इसीसे जनता इस 'अभिसार' की बात को समझ नहीं सकी।

छंदों में नवीन प्रयोगों की बात कहना ही नहीं है। खड़ीबोली हिन्दी की कविता का प्रारंभ हरिश्चन्द ने किया; श्रीधर पाठक ने कवित्त-सवैया के अतिरिक्त कुछ नए छंद इस काव्य में जोड़े, मैथिलीशरण गुप्त और हरिऔध ने अनेक प्रयोग किये। परन्तु १६१३—१४ तक (जब प्रसाद क्षेत्र में आये) छंदों की जड़ता बनी हुई थी। नये भावों के प्रकाशन के लिये नये छंदों का आयोजन नहीं हो रहा था। इन्दु-काल (१६०६-१६) में प्रसाद ने जितने नये छंदों का प्रयोग किया है, उतने नए छंदों का प्रयोग किसी अन्य छायावादी कवि ने नहीं किया। उन्होंने विदेशी छंदों को भी अपनाया। ग़जल, चतुष्पदी (सानेट), संबोधनात्मक गीति (Ode), त्रिपदी (बंगला छंद) अतुकांत (Verse Litre), भिन्न तुकांत, पयार (बंगाल)—न जाने कितने छंद हैं। 'चौपाई' (१६ मात्रा) के तो अनेक नए प्रयोग हमें मिलते हैं। असम मात्रिक और विषम मात्रिक छंदों के बहुत से प्रयोग हमें 'झरना' (१६१४-१९१७) में मिल जायेंगे। च तो यह है कि छायावादी कवियों ने पहली बार खड़ीबोली के छंदों को प्राण दिये। उन्हें जीवनरस से सिक्त किया। कहाँ द्विवेदी युग के जड़, गति-हीन, उल्लासशून्य छंद, कहाँ नए कवियों की संगीतमयी पद-योजना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १६२५ ('आँसू' के प्रकाशन की तिथि) तक प्रसाद नए काव्य (छायावाद) की रूपरेखा स्थिर कर चुके थे। इस नए काव्य की विशेषताएँ थीं :

१—विषयजन्य विशेषताएँ

(क) आध्यात्मिक प्रेम की तितीक्षा

(ख) प्रेम की रहस्यमयता

(ग) पीड़ा का महत्त्व गान

(घ) कथाकाव्य के प्रति प्रेम

(ङ) प्रकृति-प्रेम

(च) वेदना की प्रधानता :

(i) जीवन के यथार्थ रूप का चित्रण

(ii) लघु और उपेक्षित जीवों और व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति

(iii) दुःख और वेदना की अनुभूति

(iv) व्यक्तिगत जीवन के दुःखों और अभावों का वास्तविक उल्लेख

(v) संकीर्ण संस्कारों से के प्रति विद्रोह

(vi) मनुष्य की दुर्बलताओं का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण

(vii) व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक अवस्था और सामाजिक रूढ़ियों की परख

(viii) स्त्रियों के सम्बन्ध में नारीत्व की दृष्टि

२—शैलीजन्य विशेषताएँ

(क) स्वानुभूतिपूर्ण अभिव्यक्ति (व्यक्तिवाद)

(ख) भावों की सूक्ष्म व्यंजना

(ग) काव्य में नाटकीयता का प्रयोग

(घ) लाक्षणिकता (आभ्यंतर वर्णन के लिए शब्दों की नई भाव भंगिमा)

(ङ) कल्पना का उद्रेक

(च) नया वाक्यविन्यास जिसमें सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास हो और जो भाव में एक तड़प उत्पन्न कर दे !

३—छंदगत विशेषताएँ

(क) अनेक नए छंदों का प्रयोग

(ख) गीतात्मकता

ये सब विशेषताएँ उनके प्रारंभिक काव्य (१९०६-१९१४) में ही पुष्ट हो जाती हैं। इसके बाद उनका आँसू-काल (१९१४-२६)

प्रारंभ होता है। इस काल में इन प्रवृत्तियों का विशेष विकास होता है। 'आँसू' इस विकास का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। १९२५ ई० में 'आँसू' पहली बार प्रकाशित हुआ। छायावाद-काव्य में यह पहली लोकप्रिय चीज़ है। १९३३ के दूसरे और १९३८ के तीसरे संस्करणों में यह काव्य नई पंक्तियों के साथ फिर-फिर प्रकाशित हुआ। जिस रूप में यह आज प्राप्त है, वह इसका प्रौढ़तम रूप है। कवि बार-बार परिवर्तन-परिवर्द्धन करता गया है। 'आँसू' में कोई कहानी नहीं। केवल कहानी का आभास मिलता है। इसलिए अर्थ अस्पष्ट ही रह जाते हैं। जहाँ काव्य की वीथिका और लेखक की मनोभूमि के संबंध में भी अटकल लगानी पड़ती है, वहाँ यही दशा होती है। कवि ने किसी से प्रेम किया है। यह प्रेम-व्यापार अनेक परिस्थितियों में अनेक दिनों तक चलता रहता है। परन्तु सहसा यह समाप्त हो जाता है। कदाचित् किसी कारण से प्रेम-पात्र ने प्रेमी को अपनाना छोड़ दिया। जहाँ मिलन-सुख की तरंगें थीं, वहाँ विरह की तप्त झंझा चलने लगी। 'आँसू' काव्य इसी विरह काव्य का आधुनिक रूप है।

पहले संस्करण में 'आँसू' विशुद्ध प्रेम-काव्य है। उसका विषय है लौकिक प्रेम। परन्तु दूसरे-तीसरे संस्करणों में अनेक नये छंद और जोड़ कर उसे आध्यात्मिक रूप देने का प्रयत्न किया गया है जिससे पाठक की उलझन और भी बढ़ जाती है। 'प्रसाद' के प्रेम-काव्य को समझने में दूसरी बड़ी कठिनाई यह है कि वे उर्दू-फ़ारसी के काव्य से काफ़ी प्रभावित हैं और उनकी संस्कृत-गर्भित भाषा और लक्षणा से प्रभावित पाठक यह बात जान नहीं पाता। इसका फल यह होता है कि सारा काव्य ही अस्पष्ट हो जाता है। उर्दू साहित्य के इस प्रभाव ने 'आँसू' को अस्पष्ट बना दिया है। बात कहने की लाक्षणिक शैली में अस्पष्टता आ जाती है, उसे हटा देने पर इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश काव्य उपालंभ-मात्र है। प्रेमी-प्रेमिका के मिलन-दिन कितने सुख के दिन थे। विरह के दिनों में उनकी स्मृति उठती है

और प्रेमी कवि आकुल हो उठता है। वे प्रभात, वे सायं, वे चंद्रिका से धोई हुई रातें। अब तो एकाकी जीवन बिताना है, अकेले तारे गिनना है। अंत में उपालंभ देते-देते कवि थक जाता है। इस विचार से उसे शांति मिल जाती है कि समय आयेगा, तब यह दुख भी भुला दिया जायगा। वह सोचता है—यह तो मानव जीवन है, इसमें विरह-मिलन का परिणय चलता रहता है। सुख-दुःख, विरह-मिलन ये दोनों तो मन के खेल हैं। अतः हताश होना कैसा। समय का प्रवाह दुःख सुख के आवर्तों-विवर्तों के ऊपर एक महान शांतिचक्र की भाँति बहता रहता है। यह दार्शनिक निस्पृहता उसे शक्ति देती है। वह निश्चेतन रहकर उस दिन की प्रतीक्षा करने लगता है जब मन निःस्पृह भाव से सुख-दुख के ऊपर उठ जायगा। उस समय प्रेमी के मन को शांति प्राप्त होगी, वेदना की झंझा रुक जायगी और तब यही विच्छेद अनंत मिलन में बदल जायगा।

'लहर' (१९३५) और कामायनी (१९३७) प्रसाद की अन्तिम रचनाएँ हैं। 'आँसू' ने एक नई मूर्तिमत्ता, एक नए कल्पना-विलास, एक नूतन स्वातंत्र्य दिशा की ओर संकेत किया था। 'लहर' और 'कामायनी' इन्हीं प्रवृतियों की श्रेष्ठतम परिणिति हैं। 'लहर' में जयशंकरप्रसाद की प्रौढ़तम प्रगीतियों और कुछ मुक्तछंदों का संग्रह है। यह संग्रह कवि को प्रोढ़तम रूप में हमारे सामने रखता है। इस समय कवि 'कामायनी' को समाप्त कर रहा था। इस संग्रह की कविताओं को भली-भाँति समझ लेने पर हमें प्रसाद की सभी प्रवृत्तियाँ सुन्दर ढंग से समझ में आती हैं। 'लहर' की कविताओं की चार दिशाएं हैं: १ रहस्यवाद, २ प्रकृतिवाद, ३ करुणा। 'अशोक की चिंता', 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'शेरसिंह का आत्म-समर्पण' और 'प्रलय की छाया' चार कथात्मक कविताएँ हैं। इन सब कथाओं का मूलस्रोत ऐतिहासिक है। इस श्रेणी की कविताएँ आधुनिक हिन्दी साहित्य में विरल हैं। निराला की 'शिवाजी का पत्र' इसी श्रेणी

की कविता है। इन कविताओं की विशेषता उनके विषय से संबंधित नहीं है। वे मानसिक और कलात्मक चित्रण के लिए महत्वपूर्ण हैं। इन कविताओं का हिन्दी काव्य-साहित्य में विशेष स्थान रहेगा। यह तो हुई नई प्रवृत्ति। शेष प्रवृत्तियाँ प्रारंभिक काल से बराबर पुष्ट, बराबर स्वस्थ होती चली आ रही हैं। कहीं कवि शुद्ध रहस्यवादी भूमि पर प्रतिष्ठित होकर जीव-ब्रह्म की लुका-छिपी को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में रखता है; कहीं प्रियतम की आँख-मिचौनी और उसकी आतुर अपलक प्रतीक्षा उसे पागल बना देती है। कहीं करुणा और वेदना को ही जीवन का सब से बड़ा सत्य मानकर कवि उन्हीं में लीन हो जाता है। 'आँसू' के बाद 'लहर' प्रसाद का सबसे सुन्दर काव्यग्रन्थ है। इसकी प्रकृति-सम्बन्धी कविताएँ विलास और ऐश्वर्य की वह झाँकी सामने रखती हैं जो प्रसाद ने अपने बचपन में देखी थी। कवि पाता है उसका सोने का संसार खो गया। कवि को लगता है, प्रकृति का वैभव उसके लिए सुख का वरदान नहीं लाता। लगता है जैसे प्रसाद का व्यक्तित्व इन रचनाओं में तद्रूप हो गया हो। 'प्रसाद' विलास ऐश्वर्य और मादकता के कवि हैं। उन्होंने अतीत के टूटे हुए स्वप्न और विलासमय रंगों से रँगी सायं-प्रात का विशद चित्रण किया है। स्वयं अपने में निमज्जित हो, कालिदास और रवीन्द्रनाथ के प्रेम-विलास और रहस्य की मादक कल्पना को उन्होंने अपनाया है और उसे सोने के पत्रों में सँजो कर रखा है। कला की ये विलास से सँवारी रेखाएँ जनकाव्य की श्रेणी की वस्तु नहीं, परन्तु एक विशेष-वर्ग के एक विशेष श्रेणी के काव्य का अन्यतम रूप हैं।

अंत में, हम देखते हैं कि 'इन्दु' (१६०६) से लेकर 'कामायनी' (१६३६) तक प्रसाद ने जो काव्य लिखा वह अधिक नहीं, परन्तु जब हम उनकी अनेक साहित्यक प्रवृत्तियों को देखते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने काव्य को बड़ी सावधानी से बनाया-सँवारा है। इतनी बड़ी साधना कदाचित् किसी आधुनिक कवि को नहीं करनी

पड़ी। 'साधना' से हमारा तात्पर्य कला और विचार (चिंतन) की साधना से है। कहाँ 'भारतेन्दु' में प्रकाशित ब्रजभाषा की वह तुकबंदियाँ और कहाँ कामायनी का हिमचुंबी ऐश्वर्य! इस कवि ने नई भाषा गढ़ी, नई शैली का आविष्कार किया, अनेक नये छंद बनाये और नये भावों, नये विचारों, नये दृष्टिकोणों को रस देकर काव्य-भूमि में उतारा। उपन्यास, कहानी और नाटक के क्षेत्र में भी प्रसाद की सार्वभौमिक प्रतिभा ने बहुत कुछ दिया—सच तो यह है कि उन्होंने नये साहित्य के प्रत्येक अंग में क्रांति को जन्म दिया। परन्तु इन क्षेत्रों में और और प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। काव्य के क्षेत्र में तो वे अकेले थे। 'पंत' और 'निराला' कुछ बाद में आये। उन्होंने इतनी नई प्रवृत्तियाँ नहीं चलाईं, प्रसाद-द्वारा चली प्रवृत्तियों को ही अपनी प्रतिभा का बल दिया। निराला में विद्रोह का तेज अधिक है, पंत में अलंकृत सज्जा अधिक है, परन्तु नये काव्य के प्राण तो प्रसाद हैं। उनमें बंगलापन नहीं है, अंग्रेजीपन नहीं हैं, वे नये काव्य के विष्णु हैं। निराला ने रुद्र की तरह तांडव प्रहार कर, जो पुराना था उसे तोड़-फोड़ कर जनता को चकित कर दिया, पंत ने अनेक नये काव्य-लोकों को जन्म दिया, परन्तु पचीस वर्ष तक नई प्रवृत्तियों का पोषण प्रसाद की प्रतिभा को ही करना पड़ा।

इस आधुनिक युग की सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा का चमत्कार कामायनी (१९३६) में देखने को मिलता है। यह महाकाव्य जहाँ एक ओर रामचरितमानस के बाद महाकाव्य-परंपरा को फिर से स्थापित करता है, वहाँ दूसरी ओर छायावाद-काव्य की गीतिप्रधान, लाक्षणिक कविता का भी प्रतिनिधित्व करता है। पूर्व के काव्य में तो इस तरह की कोई चीज है ही नहीं पश्चिम के काव्य में इस श्रेणी की चीज़ें कम मिलेंगी। 'गेटे' का 'फास्ट' (Faust) और 'हार्डी' का 'डाइनेस्ट' (Dynest) शैली और विचारधारा के प्रौढ़त्व की दृष्टि से इस रचना से समानता अवश्य रखते हैं। स्वयम् प्रसादजी के काव्य

में कामना (१६२७) इसी श्रेणी का नाटकीय प्रयोग है। 'कामना' में प्रसाद ने आधुनिक वित्त-प्रधान मशीनी सभ्यता पर व्यंग किया है। इस मशीनी सभ्यता के विरुद्ध उन्होंने कृषिप्रधान सभ्यता (Pastoral Civilisation) की आवाज़ उठाई। 'एक घूंट' में उन्होंने औपनैषदिक आश्रमों की सभ्यता की ओर इशारा किया। परन्तु इन समाधानों से उनकी तुष्टि नहीं हुई जान पड़ती। आधुनिक मशीनी सभ्यता इतनी हल्की नहीं कि उसे 'सहज' ही में उड़ाया जा सके। इसीलिये 'कामायनी' में प्रसाद को और ऊपर उठकर चिंतन के आधार पर नया समाधान उपस्थित करना पड़ा। उन्होंने आधुनिक विज्ञानवाद को 'कर्म'-वाद माना। उन्होंने ज्ञान, कर्म और भाव के समन्वय में ही जीवन की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि संभव समझी। इसीसे 'कामायनी' लिखने की आवश्यकता उन्हें जान पड़ी। तीन सौ वर्ष पहले तुलसी ने रामाश्रित भक्तिमय जीवन के आदर्शों को हिन्दी प्रदेश की जनता के सामने रखा था। तबसे भारतीय जीवन पर अनेक प्रभाव पड़े। पश्चिमी की सक्रिय कर्म-प्रधान ऐहिकतता से संपर्क बढ़ा। एक नए जीवन-दर्शन की पुकार हुई। आधुनिक युग में दयानंद, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ, गांधी और जवाहर प्रभृति महापुरुषों ने नई परिस्थितियों में नये जीवन-दर्शन गढ़ने के प्रयत्न किये। अपने साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द और प्रसाद इस ओर अग्रसर हुए। 'कामायनी' की महत्ता यही नया जीवन-दर्शन है। प्रसाद का सारा काव्य इस नये दर्शन की भूमिका है।

(इ) युग की पृष्ठभूमि

प्रत्येक युग की अपनी कविता होती है। युग की नई-नई भावनाएँ, नई-नई प्रवृत्तियाँ कवियों के संचेतन मन में जो प्रतिक्रियाएँ उठाती हैं, वह नए-नए रूपों से नए-नए छंदों में प्रकाशित होती हैं। 'छायावाद' काव्य के पीछे भी उसके युग (१६१०—३६) की

पृष्ठभूमि है। इस चतुर्थ शताब्दी के वातावरण को समझे बिना हम प्रसाद के काव्य का—और उनके महाकाव्य 'कामायनी' का—मूल्यांकन नहीं कर सकते। कवि जयशंकरप्रसाद ने हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में उस समय पदार्पण किया जब सारा काव्य द्विवेदी-युग की जड़ता और इतिवृत्तात्मकता से निष्क्रिय और निष्प्राण हो रहा था। १६००—१० तक का काव्य मूलतः नैतिकवादी है। नारी-सौन्दर्य, प्रेम, कल्पना-विलास, जीवन के आनंद का स्वच्छन्द प्रकाशन—इनका इस काव्य में ज़रा भी स्थान नहीं है। नए खड़ी बोली काव्य को गढ़ने के लिए आचार्य-द्विवेदी ने मराठी काव्य को अपना आदर्श माना था। आधुनिक भारतीय भाषा के काव्यों में मराठी का काव्य सबसे अधिक पुरातनवादी है। वही संस्कृत के वृत्त, वही रुक्ष पदावली, वही नैतिकवाद। इसका फल यह हुआ कि हिंदी की द्विवेदी-युग की कविता को अच्छा नेतृत्व नहीं मिला और वह जड़ रूढ़ि बन गई। श्रीधर पाठक और मैथिलीशरण गुप्त के काव्य को छोड़कर उसमें क्या धरा था? स्वयं श्रीधर पाठक अंग्रेजी के १८वीं सदी के कवियों—गोल्डस्मिथ, पोप, ड्राइडन आदि—से प्रभावित थे। प्रत्येक युग का साहित्य उसके अनुरूप होता है। १६वीं शताब्दी के अंतिम दशक और २०वी शताब्दी के पहले दो दशक अतिनैतिकवादी थे। क्रांति का कहीं नाम नहीं था। रूढ़ियों-परंपराओं का समर्थन जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता समझा जाता था। इसी से कवियों की दृष्टि आचारवादी १८वीं शती के क्लासिकल काव्य और मराठी कविता तक सीमित रही।

परन्तु १६वीं शताब्दी के अंत होते-होते देश से बंगला काव्य परिचित हो रहा था। माइकेल, विहारीलाल, हेमचंन्द्र और रवीन्द्र हिंदी प्रदेश में भी पहुँचे। इनमें रवीन्द्र की कविता पर अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद, उपनिषदों के रहस्यवाद, बंगला भावुकता और वैष्णव भक्ति का प्रभाव था। १९१२ के आसपास उनके काव्य के अनुकरण से ये प्रभाव भी हिन्दी में आ गये। परन्तु रवीन्द्र ने अकेले

छायावादी काव्य को जन्म दिया, यह कहना अत्युक्ति होगी। १९०० के बाद ही 'सरस्वती' में कीट्स, शेली, वर्ड्सवर्थ, ब्लैक आदि अंग्रेज़ी रोमांटिक कवियों के अनुवाद प्रकाशित होने लगे थे। इन अनुवादों ने अनुवाद-कर्त्ताओं और कवियों को प्रभावित किया। दूसरे, इस समय अंग्रेज़ी की उच्च-कक्षाओं में रोमांटिक काव्य पढ़ाया जाने लगा था और हिन्दी के नये कवि इससे अपरिचित नहीं रह सके। पंत द्वारा अंग्रेज़ी रोमांटिक काव्य का प्रभाव मुख्य रूप से हिन्दी में आया। 'पंत' और 'निराला दोनों रवीन्द्र के काव्य से प्रभावित हैं। निराला ने विवेकानन्द के अद्वैत भक्ति के काव्य से भी स्फूर्ति ली है। 'प्रसाद' ने रवीन्द्र की 'गीतांजलि' के प्रभाव को ग्रहण किया। 'झरना' की कविताएँ इसका प्रमाण हैं।' परन्तु उन्होंने शीघ्र ही इस प्रभाव को छोड़ दिया। उर्दू-काव्य की व्यंजनाशैली और भावुकता और संस्कृत मुक्तकों एवं आचार्यों की स्थापनाओं से इंगित लेकर उन्होंने अपने लिए एक विशिष्ट काव्य-शैली का निर्माण किया।

संक्षेप, एक दशक के भीतर (१९१०—२०) हिन्दी काव्य में महान् क्रांति हो गई। इस क्रांति में निम्न प्रभावों का हाथ था :

(१) रवीन्द्रनाथ का बंगला काव्य
(२) विवेकानन्द का बंगला काव्य
(३) १९वीं शताब्दी के अंग्रेजी रोमांटिक कवियों का काव्य
(४) ध्वनिप्रधान, लाक्षणिक शैली
(५) उर्दू काव्य की व्यंजनाशैली और भावुकता
(६) प्रकृति की ओर स्वाभाविक और रहस्यात्मक आकर्षण
(७) रीतिकाव्य के प्रति प्रतिक्रिया (वासना-मूलक स्थूल सौन्दर्य से हटकर सूक्ष्म सौन्दर्य की अभिव्यक्ति)
(८) दर्शनशास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन का प्रभाव
(९) व्यक्तिवाद (व्यक्तिगत दुःख-सुख और बुद्धिप्रसूत चिंतन का प्रभाव)

(१०) द्विवेदी-युग के काव्य के प्रति प्रतिक्रिया (रसात्मकता और अनुभूति पर बल)

पंत और प्रसाद दोनों ने अपने काव्य की भूमि को स्पष्ट करते हुए रीतिकाव्य की जड़ोन्मुख प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। प्रसाद कहते हैं—"शृङ्गार रस की मधुरता पान करते-करते आपकी मनोवृत्तियाँ शिथिल हो गई हैं इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी, अपने को भुला देने वाली कविताओं की आवश्यकता है। अस्तु, धीरे-धीरे जातीय सङ्गीतमयी, वृत्ति-स्फुरणकारिणी, आलस्य को भंग करनेवाली, आनन्द बरसाने वाली, धीर गम्भीर पदविक्षेपकारिणी, शांतिमयी कविता की ओर अपने को अग्रसर होना चाहिये।" ('इन्दु', कला २, किरण १) 'पल्लव' की भूमिका में पंत ने रीतिकाव्य पर विशेष रूप से चोटें की हैं। महादेवी भी इसी दृष्टिकोण से लिखती हैं—"कितने दीर्घकाल से वासनोन्मुख स्थूल सौन्दर्य का हमारे ऊपर कैसा अधिकार रहा है यह कहना व्यर्थ है। युगों से कवि को शरीर के अतिरिक्त और कहीं सौन्दर्य का लेशमात्र भी नहीं मिलता था। वह उसी के प्रसाधन के लिए अस्तित्व रखता था। जीवन के निम्न-स्तर से होता हुआ यह स्थूल, भक्ति को सात्विकता में भी कितना गहरा स्थान ला सका है यह हमारे कृष्णकाव्य का शृंगार-वर्णन प्रभावित कर देगा। यह तो स्पष्ट है कि खड़ीबोली का सौन्दर्यहीन इतिवृत्त उसे हिला भी नहीं सकता था। छायावाद यदि अपने संपूर्ण प्राणवेग से प्रकृति और जीवन के सूक्ष्म सौन्दर्य को असंख्य रंगरूपों में अपनी भावना द्वारा सजीव करके उपस्थित न करता तो उस धारा का × × । मनुष्य की वासना को बिना स्पर्श किये हुए जीवन और प्रकृति के सौन्दर्य को उसके समस्त सजीव वैभव के साथ चित्रित करने वाली इस युग की अनेक कृतियाँ किसी भी साहित्य को सम्मानित करेंगी।"

यह तो स्पष्ट है कि नया काव्य (छायावाद) मूलतः साहित्यिक आन्दोलन की उपज था। रवीन्द्र, विवेकानन्द और अंग्रेजी रोमांटिक

कवियों—शेली, कीट्स, टैनीसन, वर्ड्सवर्थ—की रचनाएँ इस काव्य के प्रवर्तन में विशेष रूप से सहायक हुईं। हिन्दी कवियों ने इन रचनाओं को रीतिकाव्य और द्विवेदीयुग के काव्य के सामने रखा। उन्होंने जो अंतर देखा, वह इतना बड़ा था कि वे स्तंभित रह गये। इन रचनाओं ने उनकी आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर दी। वे रीतिकाव्य और द्विवेदीयुग के काव्य के विरोध में कटिबद्ध हो गये। परंपराबद्ध और जड़गद्य के विपरीत उन्होंने जीवित, जाग्रत, स्पंदित काव्य की परंपरा चलाई। परोक्ष में अपने युग की परिस्थितियों से भी वे प्रभावित हुए। उनका वेदनावाद युग की पराजित भावना का ही प्रतीक था। परन्तु मूल रूप से इस काव्य में विरोधात्मक तत्त्व ही अधिक थे। रीतिकाव्य का विरोध, द्विवेदीयुग के गद्यकाव्य का विरोध, प्रकृति के प्रति पुराने दृष्टिकोण का विरोध, पराजित भावनाओं के विरुद्ध अहंता-प्रधान भावनाओं की अवस्थिति। इस काव्य ने अपने युग को स्वीकार नहीं किया। उससे ऊपर उठ कर उसने छंद, शैली, भाव, विचार सब में क्रांति उत्पन्न कर दी। यह अवश्य है कि इन छायावादी कवियों ने सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रश्न नहीं उठाये। उन्होंने अपने स्वप्नों के लिए एक नया 'कल्पनालोक' ही बना लिया। इसी से वे बाद में 'पलायनवादी' कहलाये। पंत ने इस लांछा को स्वीकार भी किया है। वे कहते हैं—"वह (छायावादी काव्य) नवयुग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश नहीं कर सका था। उसमें व्यावसायिक क्रांति और विकासवाद के बाद का भावना-वैभव तो था, पर महायुद्ध के बाद की (अन्न-वस्त्र) की धारणा (वास्तविकता) नहीं आई थी। उसके 'हास-अश्रु-आशाऽकांक्षा' 'खाद्य मधुपानी' नहीं बने थे। इसलिए एक ओर वह निगूढ़, रहस्यात्मक, भावप्रधान (सब्जेक्टिव) और वैयक्तिक हो गया, दूसरी ओर केवल टेकनिक और आवरण-मात्र रह गया।"

परन्तु चाहे अपरोक्ष में इस काव्य में युग-चित्र जरा भी नहीं हो,

परोक्ष रूप में अपने युग का भी बहुत कुछ इस काव्य के भीतर है। गांधीवाद और करुणावाद में बहुत कुछ समानता है। चारों ओर के रुके हुए जीवन से भाग कर कल्पना के स्वर्ग में विहार करने की लालसा भी उसमें है। जो अप्राप्य नहीं है, उसके प्रति क्रन्दन, उसके लिए आग्रह—उस युग की राजनीति की यही स्थिति तो थी। साहित्य में यही परमात्मा के प्रति आत्मा की विकलता के रूप में आया। कवि रीतिकाव्य का विरोध लेकर उठा, परन्तु नैतिकता-प्रधान युग में वह जब प्रेम (संयोग-वियोग) की बात कहने चला, तो 'लता-वृक्ष', 'जुही की कली और पवन', 'पृथ्वी और आकाश' के परिरंभण और अनन्त मिलन के चित्रों में यही रीतिकाव्य एक दूसरा रूप धर कर घुस गया। महादेवी वर्मा ने कहा है कि छायावाद स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह था, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि 'स्थूल' इस काव्य में भी कम नहीं है। केवल ढंग बदल गया है। नारी के प्रति यौन-भावना अब भी उतनी ही प्रबल है, परन्तु अब वह प्रच्छन्न रूप में सामने आती है।

फिर भी यह कहना एकदम ठीक नहीं होगा कि इस नये काव्य (छायावाद) में युग-समस्याओं की कोई चिंता ही नहीं। सामाजिक और राष्ट्रीय जागृति का प्रभाव पंत, निराला और प्रसाद के काव्य पर स्पष्ट रूप से लक्षित है। 'कामायनी' में प्रसाद ने जीवन-दर्शन के रूप में एक बड़ी व्यापक अंतर्दृष्टि देने की जो चेष्टा की है, उसके पीछे युग की चेतना ही तो है। जो प्रवृत्ति राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में असहयोग, विद्रोह और क्रांति के लिए अग्रसर हुई वही प्रवृत्ति साहित्य में छायावाद के रूप में प्रगट हुई। विषय, शैली और छंदों की मुक्ति की बात बार-बार इस काव्य में उठती है। विषम मात्रिक, अतुकांत और मुक्तछंद के रूप में कवि ने उस स्वतंत्रता का रस पाना चाहा है जो उस युग के राजनीतिज्ञ के लिए भी स्वप्न थी। सच तो यह है कि छायावाद-काव्य अनेक सूक्ष्म तन्तुओं द्वारा अपने युग से जुड़ा हुआ है।

अंत में हमें एक बड़े प्रश्न पर विचार करना है। प्रसाद की कविता में सबसे महत्वपूर्ण क्या है—क्या उनका व्यक्तित्व ? क्या उनकी शैली ? क्या उनका युग ? क्या बाह्य प्रभाव ? कहना कठिन है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनके व्यक्तित्व, उनकी विचारधारा और उनकी शैली ने नये काव्य के व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण योग दिया है। प्रसाद की कविता को समझे बिना छायावाद-काव्य को समझा ही नहीं जा सकता।

२

'कामायनी' की भूमिका [क]

'कामायनी' प्रसाद की प्रौढ़तम रचना है और उसे छायावाद-काव्य के अन्यतम उदाहरण के रूप में उपस्थित किया जा सकता है। छायावाद की सारी दुर्बलता और उसकी सारी शक्ति के दर्शन हमें इस कथाकाव्य में मिल जाते हैं। जिस प्रकार सूरसागर कृष्ण-काव्य का, रामचरितमानस राम-काव्य का, बिहारी-सतसई शृंगार काव्य का और प्रियप्रवास द्विवेदी युग के काव्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसी प्रकार जयशंकरप्रसाद की कामायनी को अधुनिक युग की सबसे महत्वपूर्ण धारा 'छायावाद' का प्रतिनिधि-काव्य कहा जा सकता है। इस एक ग्रन्थ को अच्छी तरह समझ लेने पर हम स्वच्छंदतावाद (छायावाद) की सारी प्रवृत्तियों से परिचित हो जाते हैं।

चित्राधार (१९०९), काननकुसुम (१९१२), आँसू (१९२५), झरना (१९२७) और लहर (१९३२)—प्रसाद के अन्य पाँच काव्य-ग्रंथ हैं। 'कामायनी' का समय काफ़ी लम्बा है। ग्रन्थ १९३५ में प्रकाशित हुआ, परन्तु १९२०-२२ के आस-पास से प्रसाद इस रचना में लगे हुए थे। 'त्यागभूमि' (१९२८) में 'नारी और लज्जा' शीर्षक से इस काव्य का एक उत्कृष्ट अंश प्रकाशित हुआ और तब से भिन्न-भिन्न मासिकों में इसके अंश बराबर प्रकाशित होते रहे। इस प्रकार प्रसाद का सारा प्रौढ़ काव्य (आँसू, झरना, लहर) इस ग्रन्थ के समानान्तर चलता है।

द्विवेदी-युग (१९००-२१) के काव्य की सर्वोत्कृष्ट रचना 'प्रियप्रवास' है। इसकी कथा पौराणिक है, राधा-कृष्ण का प्रेम और विरह।

इसे कवि ने अत्यन्त संयमित ढंग से प्रकाशित किया है। कथा में थोड़ी बहुत नवीनता का आग्रह है भी, परन्तु अभिव्यक्ति के प्रकार वही पुराने हैं, सर्ग-विभाग, संस्कृतात्मक, छंद, काव्य-रूढ़ियों और काव्य प्रसिद्धियों का प्रयोग, अभिधात्मक वर्णन-शैली। वह मर्यादा-प्रधान काव्य (classic poetry) और संयमात्मक कला का सुन्दर उदाहरण है और इस प्रकार की प्राचीन रचनाओं में रामचरितमानस (१५७४ ई०) के समकक्ष आता है। प्राचीन स्वच्छन्दतावादी काव्य के नमूने सूरसागर (१५२५) और पद्मावत हैं।

द्विवेदीयुग की जड़ता, पुरोगामिता और इतिवृत्तात्मकता के विरोध में छायावाद या स्वच्छन्दतावाद का जन्म हुआ। चित्राधार की रचनाएँ प्रारंभिक स्वच्छन्द काव्य के रूप में उपस्थित की जा सकती हैं। इस धारा का अन्य सुस्पष्ट प्रकाशन 'आँसू', 'वीणा' और 'अनामिका' में हुआ, परन्तु यदि हम सरस्वती (१९०० में स्थापित) की द्विवेदी-युग की फ़ाइलों का अध्ययन करें तो हमें शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों से ही इसके विखरे चिह्न मिलने लगते हैं। १९११ में गीतांजली (रवि बाबू) के प्रकाशन ने इस नवीनतम प्रवृत्ति को बल दिया और छायावाद (स्वच्छन्दतावाद) की सर्वप्रधान भंगिमा रहस्यवाद का जन्म हुआ। राय कृष्णदास ने 'प्रसाद' के संस्मरण लिखे हैं। इनसे पता चलता है कि रवि बाबू की गीतांजलि से प्रभावित होकर प्रसाद ने भी गद्यगीत लिखे थे, परन्तु राय कृष्णदास जी के गद्य-गीतों को सुनने के बाद उनके रास्ते से हटने की भावना के कारण उन्होंने बहुत से गद्यगीत नष्ट कर दिये और कुछ को कविता का रूप दे दिया। 'चित्राधार' की रहस्यात्मक कविताओं की यही कहानी है। वह राय कृष्णदास की 'साधना' की गद्य-गीतियों की श्रेणी की रचनाएँ हैं। रवीन्द्र बाबू के प्रभाव-क्षेत्र से निकल कर नये कवियों ने भाषा, भाव और अभिव्यक्ति के क्षेत्र में धीरे-धीरे नया मार्ग ढूँढ निकाला।

रीतिकाल में हिन्दी कविता संस्कृत-काव्य-नियमों, रस, अलंकार,

ध्वनि, व्यंजनादि की रूढ़ियों के जटिल जाल में बँध गईं। १६०० ई० से लेकर १८५७ ई० तक रस और अलंकारों के उदाहरण के रूप में बँधी हुई पिष्टपेषित कविता की बाढ़ रही। प्रेम और वासना, संयोग और वियोग, षटऋतु-वर्णन, बारह-मासा—इस कविता की इतनी ही सरगम थी। जीवन के तीन सप्तक तो क्या, एक सप्तक के भी सारे स्वर इस कविता में नहीं बोलते। घनानद, सेनापति, बोधा, हरिश्चन्द्र-प्रभृति रस-मर्मज्ञ प्राकृत कवियों ने रीतिकविता की जड़ता और मशीन जैसी निष्प्राणता का विरोध किया और हृदय को स्पर्श करने वाली भाषा में हृदय से सहज फूट पड़ने वाले भावों का प्रकाशन किया। यह सब हुआ जैसे मरुभूमि में प्राकृतिक स्रोत फूट पड़े हों और उन्हें घेर कर लता-निकुंज, वृक्षादि अपनी मनोरम छटा दिखा रहे हों, परन्तु इस छोटे-मोटे उर्वर क्षेत्रों से मरुस्थल की सरसता, जड़ता और शून्यता की कठोरता कम नहीं हो सकती थी। ग़दर (१८५७ ई०) के बाद हिन्दी भारती ने सामयिक विषयों को अपनाया और श्रीधर पाठक ने प्रकृति के स्वतंत्र, स्वच्छन्द और सहज रूप को काव्य का विषय बनाया। रीतिकाल की विषय और अभिव्यंजना की जड़ता को १९वीं शताब्दी के अंतिम दशकों की सामयिक (राजनीतिक, सामाजिक) और प्रकृति-सम्बन्धी कविता ने खुला चैलेंज दिया। सरस्वती के प्रकाशन के साथ भाषा भी ब्रजभाषा से वदल कर खड़ीबोली हो गई। अगले २५ वर्षों का इतिहास नये-नये विषयों, नये-नये छन्दों और नई-नई अभिव्यक्ति शैलियों के प्रयोग का इतिहास है।

कविता के बाह्य रूपों में परिवर्तन श्रीधर पाठक के (गीतों) द्वारा हुआ। गीतों के माध्यम से एक स्वच्छन्द, अपने में पूर्ण और प्राकृतिक भावधारा का प्रकाशन आरम्भ हुआ। कविताओं में गीतात्मकता की वृद्धि हुई। गीतात्मक काव्य की अनेक शैलियों का जन्म हुआ। छायावाद-काव्य में संगीत और कला के सर्वोत्कृष्ट दर्शन मिलते हैं। विद्यापति और सूरदास की परम्परा में आगे बढ़ कर नया

कवि भाव, लय, छन्द का आशातीत संगम उपस्थित करने में सफल हुआ।

परन्तु इस वाह्य रूप का अभिव्यंजन-प्रणालियों पर प्रभाव पड़ा और बंगला, अंग्रेज़ी और लोकगीतों से प्रभावित अभिव्यंजना की नई शैलियों का जन्म हुआ। सच तो यह है; हिन्दी काव्य के किसी भी अन्य युग में इतना आमूल युगान्तर कभी नहीं हुआ है। कविता के रूप-रंग, वाह्यालंकार, अन्वयों के गठन तो बदले ही, उसकी आत्मा भी नये रँगों में रंग गई। संगीत, लय, अलंकार, भाषा, शैली—ये वाह्यांग इतने नवीन हो गये कि पुरानी पीढ़ी के कवियों और पाठकों के लिये एकदम अग्राह्य। जो बंगला और अँग्रेज़ी से परिचित नहीं थे उन्होंने इसे 'कंगारू' और 'रबड़' छन्दों का काव्य कहा। जो इन भाषाओं के साहित्य से परिचित थे उन्होंने शिकायत की कि नवीन काव्य में वास्तव में नवीन कुछ भी नहीं है, सब कुछ बंगला-अंग्रेज़ी से लिया गया है। जहाँ तक वाह्यांगों का सम्बन्ध था बात बहुत कुछ ऐसी ही थी। हिन्दी जनता कवित्त, घनाक्षरी, सवैया, दोहा, सोरठा, ग़ज़ल, संस्कृत वृत्तों, उर्दू-बह्रो, जन-छंदों (कव्वाली, पद, चौबोला आदि) से परिचित थी। तीन चरणों, पाँच चरणों, या असम चरणों के अनिश्चित से छन्द उसके लिए 'बुझौवल' से कम नहीं थे। इनकी भाषा तो हिन्दी थी, परन्तु शब्दों का प्रयोग अटपटा था। कवियों ने साधारण जन-प्रचलित शब्दावली का व्यवहार करना छोड़ दिया था और वे संस्कृत साहित्य से प्राप्त शब्दों का कुछ खुला, कुछ मुँदा प्रयोग करने लगे। इन शब्दों की आत्मा से वे पूर्णतः परिचित न थे। कितने ही नये संस्कृत शब्द बंगला के माध्यम से या अंग्रेज़ी शब्दों के आप्टे के सहारे अनुवाद किये रूप में हिन्दी काव्य में पहली बार आये। वास्तव में छायावादी कवियों ने काव्यगत भाषा के क्षेत्र को इतना सीमित कर दिया था कि सारे काव्य में कुछ सौ शब्दों का ही हेर-फेर मिलेगा। इस सीमित शब्द-कोष में भी अधिकांश सामग्री एकान्तः नवीन, अतः हिन्दी पाठकों के लिए

दुर्बोध थी। इस प्रकार नये छन्दों और नई भाषा के मेल ने हिन्दी-काव्य-रसिकों के सामने एक नई परिस्थिति उपस्थित कर दी थी। नये छन्दों के साथ संगीतात्मक की वृद्धि हुई; जो द्विवेदीयुग की बँधी-सधी, नीरस, निःसंगीत भाषा के सामने चमत्कार-सी लगती थी। नई-नई कलायें सामने आईं। शैली में भी अपूर्व परिवर्तन हो चला। जहाँ द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मक, गद्यप्रधान, जड़ता-जड़ित भाषा-शैली कविता का गला ही घोंट देती थी, वहाँ 'छायावाद' काव्य की व्यंजना-प्रधान, प्रतीकात्मक, नवीन शब्दों, शब्द-समूहों और संकेतों से भरी शैली पाठक के सामने एक ऐसा सरस, अतीन्द्रिय जगत उपस्थित कर देती है जिससे वह अभी अर्द्ध-परिचित ही हो सका था। इसका फल यह हुआ जहाँ नवीनता का आभास मिला, वहाँ सहज काव्य-रस के संयोजन में बाधा पड़ी। 'रस' के लिए सहृदय ही नहीं चाहिए, उस सहृदय को काव्य-परम्परा और काव्य-रूढ़ि का पूर्व परिचय भी होना चाहिए। नई कविता परम्परा से एकदम दूर पड़ती थी, अतः रसबोध में बाधा पड़ी और नया काव्य केवल "वैचित्र्यवाद" का खिलौना समझा जाने लगा।

वास्तव में आरम्भ के छायावाद-काव्य में बहुत कुछ अटपटा-पन है, परन्तु उसमें नये सौन्दर्य की झाँकी भी मिलती है। छाया-वाद के इस आरम्भ के काव्य में मुकुटधर पांडेय, पंत और प्रसाद की कुछ रचनाएँ आती हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में पांडेयजी के काव्य के कुछ नमूने दिये हैं—

हुआ प्रकाश तमोमय मग में
मिला मुझे तू तत्क्षण जग में
दम्पति के मधुमय विलास में
शिशु के स्वप्नोत्पन्न हास में
वन्य कुसुम के शुचि सुवास में
था तव क्रीड़ा-स्थान (१६१७)

मेरे जीवन की लघु तरणी
आँखों के पानी में तर जा!
मेरे उर का छिपा खज़ाना,
अहंकार का भाव पुराना,
बना आज तू मुझे दिवाना
तप्त श्वेत बूँदों में तर जा (१९१७)
जब संध्या को हट जावेगी भीड़ महान्
तब जाकर मैं तुम्हें सुनाऊँगा निज गान
शून्य कक्ष के अथवा कोने में ही एक
बैठ तुम्हारा करूँ कहाँ नीरव अभिषेक (१९२०)

पंत की वीणा और प्रसाद के चित्राधार, काननकुसुम और आँसू से छायावाद-काव्य की प्रारम्भिक प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा सकता है। सच तो यह है कि श्रीधर पाठक ने प्रकृति, देश और मनुष्य के सम्बन्धों को नवीन स्नेहात्मक ढंग से देखने की लीक स्थापित की। रामनरेश त्रिपाठी और रामचन्द्र शुक्ल जैसे अन्य क्षेत्रों में विशेषकृती कवियों ने द्विवेदी-युग में इसे पोषित किया और शताब्दी के दूसरे दशक के आरम्भ से इस नई धारा में इतना पानी आ गया कि दोनों कूल प्लावित हो उठे। बाढ़ के छंदहीन, बंधनहीन जलप्रवाह की तरह इसमें संयम की कमी थी—मात्रिक, वर्णनात्मक, तुक, अतुक, स्वच्छन्द, मुक्त, हलके, भारी, गेय-अगेय सैकड़ों छन्दों ने न जाने कहाँ से निकल कर मासिक पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठों पर उछल-कूद करना शुरू किया। इस उच्छृङ्खलता से आलोचक-वर्ग त्रस्त हो उठा। रामचन्द्र शुक्ल जैसे आलोचक ने इसे 'स्वच्छन्दतावाद' कहा। वास्तव में यह नई जागृति की उथल-पुथल थी।

इस नये जागरण की बेरोक उछल-कूद के बाद संयम आने लगा और १९१९—३० तक के काव्य को हम छायावाद के शैशव

(adolescence) का काव्य कह सकते हैं। १९३०—३८ तक छायावाद-काव्य प्रौढ़ता को पहुँच चुका था और शीघ्र ही इसे नवीन सामाजिक भूमि पर उगते हुए नए काव्य से संघर्ष लेना पड़ा। 'कामायनी' की भूमिका के लिए हमें १९१३—३० तक के काव्य (विशेषतः इस काल के प्रसाद-काव्य) से परिचित होना पड़ेगा।

पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में छायावाद की नई धारा की मुख्य प्रवृत्तियों का विश्लेषण इस प्रकार किया है—

(१) रहस्यभावना (इसके मुख्य कवि हैं निराला, महादेवी और रामकुमार वर्मा)

(२) अभिव्यजंन-पद्धति की विशेषता की ओर एकांत लक्ष्य। प्रतीकवाद और चित्रभाषावाद (छायावाद के सभी कवि इन रोगों से ग्रस्त हैं)।

(३) भावानुभूति का स्वरूप भी कल्पित होने लगा। जिस प्रकार अनेक प्रकार की रमणीय वस्तुओं की कल्पना की जाती है, उसी प्रकार भावानुभूति भी कल्पित होने लगी। (महादेवी, प्रसाद पर रामकुमार में यह विशेषता विशेष रूप से लक्षित है)।

(४) गीतात्मकता। उनमें अन्विति कम दिखाई पड़ती है। जहाँ अन्विति होती है, वहाँ समूची रचना अन्योक्ति-पद्धति की ओर ही जाती है (निराला, पंत, महादेवी, प्रसाद में विशेष लक्ष्य)

(५) साम्यभावना का प्रसार। शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के गूढ़ सम्बन्ध की कल्पना और इसलिए हृदयतत्त्व (सहानुभूति) का विस्तार (देखिए, निराला)।

(६) प्रकृति और उसके अनन्त रूपों और व्यापारों के प्रति रहस्याश्चर्यमयी दृष्टि और इन सब पर स्त्री-सौन्दर्य और यौन-भावनाओं का आरोप (सब कवि, विशेषकर पंत)।

(७) मानसिक सूक्ष्म विकारों और मनोभावों को पकड़ने की

चेष्टा। प्रसाद की 'प्रलय की छाया' और निराला का 'तुलसीदास' काव्य इसी श्रेणी की वस्तुएँ हैं।

(८) अन्य विषय रहे—वासनात्मक प्रणयोद्गार, वेदना-विवृत्ति, सौन्दर्य संघटन, मधुचर्या, अतृप्ति, व्यंजना, जीवन का अवसाद, विषाद और नैराश्य।

पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद-काव्य के दो अर्थ लिए हैं। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका सम्बन्ध-काव्य वस्तु में होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अशांत प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। दूसरा अर्थ व्यापक है—काव्य-शैली या पद्धति विशेष कर एक निश्चित प्रयोग। पहले वर्ग का अंश रहस्यवाद को जन्म देता है जो अंग्रेज़ी के Mysticism का प्रतीक है और दूसरा प्रतीकवाद को जिसे अंग्रेज़ी में Symbolism कहते हैं। इस प्रकार उन्होंने छायावाद की मुख्यात्मा को रहस्यात्मक प्रेम-विरह का लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली में प्रकाशन मात्र समझा है। (देखिए, 'इतिहास,' नया संस्करण पृ० ८०५—८१७)।

अन्य आलोचक शुक्लजी से पूर्णतया सहमत नहीं हैं। पंडित नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'छायावाद' के और भी व्यापक, गहरे अर्थ किये हैं। उनका कहना है—"छायावाद को हम पंडित रामचन्द्र शुक्लजी के कथनानुसार केवल अभिव्यक्ति की एक लाक्षणिक प्रणाली नहीं मान सकेंगे। इसमें एक नूतन सांस्कृति मनोभावना का उद्गार है और एक स्वतन्त्र दर्शन की नियोजना भी। पूर्ववर्ती काव्य से इसका स्पष्टतः पृथक् अस्तित्व और गहराई है" ('जयशंकर प्रसाद', पृ० १८) जान पड़ता है, उनके इस कथन का आधार 'कामायनी' है। "इस नवीन प्रवर्तन के मूल में एक स्वातन्त्र्य-लालसा, शक्ति की अभिज्ञता, और सांस्कृतिक द्वन्द्व की एक अनिर्दिष्ट स्थिति देख पड़ती है। ये सभी एक कल्पना-विशिष्ट दर्शन के अंग बने हुए

है जिनमें बड़ी व्यापक सहानुभूतियाँ हैं। इस नवीन दर्शन में कल्पना, भावना और कर्म-चेतना की सम्मिलित झाँकी है॥" (वही, पृ० १७—१८)। श्री जयशंकर प्रसाद ने भी अपने एक निबन्ध में छायावाद की व्याख्या की है और ऐतिहासिक रूप में उसे हरिश्चन्द्र द्वारा स्थापित यथार्थवाद का ही अधिक व्यापक और सूक्ष्म रूप माना है। परन्तु उन्होंने सांस्कृतिक भूमि पर चाहे रहस्यवाद को दुःखवाद पर ही क्यों न स्थापित किया हो, वह उसे मूलतः अभिव्यंजना की एक शैली मानते हैं और प्राचीन व्यंग-शैलीकारों और लक्षणा-व्यंजना पर बल देने वाले आचार्यों से उसका सम्बन्ध जोड़ते हैं। प्रसाद के काव्य, विशेषतः 'कामायनी' को समझने के लिए उनका यह दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। उनके लिए छायावाद के दो पक्ष हैं—

(१) सौन्दर्यबोध और तज्जन्य दुःखवाद या करुणावाद।
(२) नवीन लाक्षणिक या व्यंगात्मक शैली।

इन दोनों आधारों को सामने रख कर प्रसाद को भाषा और छंद के नये प्रयोग करने पड़े। छन्दों में नवीनता के आविष्कार के सम्बन्ध में उनका आग्रह अधिक नहीं था। निराला और पंत इस ओर उन्मुख हुए। प्रसाद ने करुणा और विलासात्मक सौन्दर्य के चिन्तन और उसके नाश पर आत्मा के गहरे दुःख को ही व्यक्त किया।

(२)

जयशंकरप्रसाद की प्रारम्भिक रचनाएँ हैं चित्राधार, कानन-कुसुम, महाराणा का महत्व, करुणालय, प्रेम-पथिक। इन रचनाओं में छायावाद से पहले के काव्य की मनोभूमि के दर्शन होते हैं। वास्तव में प्रेमपथिक (१९१२) को प्रसाद के नये काव्य का पहला चरण समझना चाहिए। १९१८ में प्रसाद की २४ कविताओं का संग्रह 'झरना' नाम से सामने आया। इसके कुछ बाद 'आँसू' के दर्शन हुए। इसमें कवि ने भाषा, भाव, व्यंजना की एक नई भूमि उपस्थित की थी, जैसे—

अवकाश असीम सुखों से
आकाश तरङ्ग बनाता
हँसता-सा छाया-पथ में
नक्षत्र-समाज दिखाता
नीचे विपुला धरणी है
दुखभार वहन-सी करती,
अपने खारे आँसू से
करुणा-सागर को भरती

(यहाँ कवि ने प्रकृति और मानव के चिरविरोध को स्पष्ट किया है। जब आकाश के अनन्त शून्य में इन्द्रधनुषी छायाओं के सुख-चित्र चलते रहते हैं, जब तारों का समाज हँसता दिखलाई पड़ता है, तब भी यह हमारी पृथ्वी दुःख के बोझ को ढोती है। उसके आँसू करुणा-सागर को निरन्तर भरते रहते हैं। प्रेमी की कठोर विमुखता से टूटे हुए हृदय को प्रकृति और मानव का यह चिरविरोध अत्यन्त कटु लगता है)। इन पंक्तियों में जगज्जीवन के दुःख और हाहाकार के ऊपर सुखों की अनन्त तरंगों को प्रवाहित करने वाली करुणामयी असीम सत्ता की ओर इंगित किया गया है। कवि की प्रार्थना है—

चिर दग्ध दुखी यह वसुधा
आलोक माँगती तब भी
द्रुम-तुहिन बरस दो कन-कन,
यह पगली सोचे अब भी

परन्तु कवि की वेदना का आधार क्या है, यह समझ में नहीं आता। व्यापक रूप से जगती के दुःख (रोग, शोक, जरा, मरण) इस वेदना का आधार हो सकते हैं, एक असीम सत्ता की मिलनेच्छा इसके पीछे हो सकती है, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की अनेक बाधाएँ-मर्यादाएँ कवि को किसी अज्ञात करुणा-स्रोत और सान्त्वना

भूमि की ओर इशारा कर सकती हैं परन्तु स्वयं कवि ने इन बाधाओं-मर्यादाओं को स्पष्ट नहीं किया है। उपर्युक्त वीथिका के न होने के कारण हमारे पाठक इस रहस्यमय वेदनावाद और करुणावाद को समझ नहीं सके और उन्होंने उसकी हँसी उड़ाई अथवा उसे अपार्थिक जीवों की चुहल मात्र माना।

प्रसाद ने जीवन को एक असीम चेतना-सागर में उठी हुई एक आनन्द-लहर माना है। इस लहर के अनेक उत्थान-पतन हैं, अनेक भँवर, अनेक आवर्त्तन-प्रवर्त्तन; परन्तु इसके ही भीतर आनन्द का वह मधुमय स्रोत है, जो मनुष्य को अपनी सत्ता के वास्तविक आनन्द से परिचित कराता है। इस असीम आनन्द की अन्तः-प्राप्ति के लिए कवि उस महान् चेतन सत्ता की ओर देखता है जो सृष्टि के अनेक रूपों में व्याप्त है और जो अज्ञात होने पर भी आत्मा के लिए चिर-परिचित है।

तुम हो कौन और मैं क्या हूँ
इसमें क्या है धरा, सुनो!
मानस-जलधि रहे चिर-चुम्बित,
मेरे क्षितिज उदार बनो

इस हलचल भरे संसार से हट कर कवि एक अत्यन्त दूर के रहस्य-मय लोक में जाना चाहता है जहाँ जीवन की उत्तेजना से अलग वह अपनी सत्ता का आनन्द प्राप्त कर सके। इस सम्बंध में 'लहर' का एक सुन्दर गीत उपस्थित किया जा सकता है—

ले चल, वहाँ भुलावा देकर
मेरे नाविक! धीरे धीरे
जिस निर्जन में सागर-लहरी
अम्बर के कानों में गहरी

निश्छल प्रेम कथा कहती हो
तज कोलाहल की अवनी रे
जिस गम्भीर मधुर छाया में—
विश्व चित्रपट चल माया में—
विभुता विभु-सी पड़े दिखाई
दुःख सुख वाली सत्य बनी रे
श्रम-विश्राम क्षितिज बेला से—
जहाँ सृजन करते मेला से—
अमर जागरण, उषा नयन से—
बिखराती हो ज्योति घनी रे

इसे हम 'पलायनवाद' भी कह सकते हैं, परन्तु इस 'पलायनवाद' और अंग्रेज़ी रोमांटकों के पलायनवाद में अन्तर है। अंग्रेजी पलायनवादी प्रकृति का आश्रय लेता है। परन्तु, यहाँ प्रकृति आश्रय तत्व की ओर ले जाने वाला एक बीच का विश्रामस्थल मात्र है।

(३)

ऊपर जो लिखा गया है, वह 'कामायनी' की भूमिका के लिए अनिवार्य जैसा था। इस वीथिका से प्रसाद की इस प्रौढ़तम कृति को भली भाँति समझा जा सकेगा।

'कामायनी' के नायक मनु हैं। इन्हीं देव-संतान को लेकर कथा चलती है। जल-प्रलय में सारी देव-सृष्टि जलमग्न हो गई, केवल कुछ देव-संतान बच रहे। मनु, श्रद्धा, इड़ा आदि इसी प्रकार की देव-सन्तान थे। जल-प्रलय से सन्तप्त मनु पर्वत के एक ऊँचे शिखर पर बैठकर जलमग्न पृथ्वी का धीरे-धीरे निकलना देखते थे। देव-सन्तान के मन में पहली बार चिंता का जन्म हुआ (चिंता, सर्ग १) । उषा का उदय हुआ। प्रकृति एक बार फिर हँसने लगी। मनु के मन में भी आशा का संचार हुआ। उन्होंने एक गुहा में अपना स्थान

बनाया और अग्निहोत्र प्रारम्भ कर एक बार फिर कर्ममयी देव-संस्कृति का आवाहन किया (आशा, सर्ग २)। एक दिन यों ही समुद्र तट पर अकस्मात श्रद्धा से भेंट हो गई। श्रद्धा उन्हें तपमय जीवन से हटाकर दया, माया, ममता-सम्पन्न मानव-जीवन की ओर अग्रसर करती है (श्रद्धा, सर्ग ३)। श्रद्धा मनु के साथ रहने लगी। उधर धीरे-धीरे काम के स्वर मनु के हृदय में बोलने लगे (काम, सर्ग ४)। जीवन के अनेक उपकरण इकट्ठे होने लगे। काम-बाला श्रद्धा के प्रति उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया (वासना, सर्ग ५) मनु यज्ञ और कर्म में लग गये। जल-विप्लव से बचे हुए असुर पुरोहित किलात और आकुलि यज्ञ के लिए प्रस्तुत होते हैं। मनु-पशु यज्ञ करते हैं। परन्तु श्रद्धा इस पशुबध से कुण्ठित हो जाती है। परन्तु श्रद्धा को मनते देर नहीं लगती। मनु जीवन में एक नये सुख का अनुभव करते हैं (कर्म, सर्ग ७)। इस नारी-विजय के बाद मनु का जीवन बदल जाता है। उनमें उच्छृङ्खल कर्मठता जाग उठती है। उधर श्रद्धा आसन्न प्रसव की चाह में अधीर है। एक सुन्दर लता-कुंज बनाती है। मनु नहीं चाहता कि श्रद्धा का प्रेम इस तरह बँट जाय। वह स्वच्छन्द बना रहेगा। उसमें ईर्ष्या का उदय होता है और वह श्रद्धा को छोड़कर चला जाता है (ईर्ष्या, सर्ग ८)। हृदय में तर्क-वितर्क का माया-जाल लिये अन्तः-संघर्ष में तपते हुए मनु सरस्वती के किनारे घूमते हैं। वहीं उन्हें सारस्वत प्रदेश की अधिष्ठात्री देवी इड़ा का अकस्मात परिचय होता है। सारस्वत प्रदेश उजड़ चुका है—इड़ा मनु का स्वागत करती है और शासन-सूत्र उसके हाथ में दे देती है (इड़ा, सर्ग ९)।

उधर श्रद्धा प्रतीक्षा में है। उसकी आकुल विरह-वेदना का अत्यन्त स्पष्ट चित्र उपस्थित किया गया है। इस सारे दुखी वातावरण में उसका एकमात्र सहारा है उसका बालक मानव (मनुपुत्र) जो पिता का मुख नहीं देख पाया है। श्रद्धा (कामायनी)

स्वप्न देखती है—मनु किसी दूर प्रदेश में किसी सुकुमारी (इड़ा) के संयोग से एक नई देव-सृष्टि की रचना करते हैं, परन्तु प्रजा असन्तुष्ट होकर विरोध पर तुल जाती है (स्वप्न, सर्ग १०)। वास्तव में श्रद्धा का स्वप्न सत्य का आभास मात्र है। सारस्वत प्रदेश में प्रजापक्षी किलात और आकुलि (असुर) और राजपक्षी मनु (देव) में भीषण युद्ध हुआ जिसमें मनु आहत होकर गिर पड़े (संघर्ष, सर्ग ११)। युद्ध के बाद सारस्वत प्रदेश जैसे उजड़ गया और इड़ा और मनु को भीषण पश्चात्ताप ने घेर लिया। इड़ा तर्क-वितर्क करती बैठी थी कि श्रद्धा की पुकार कानों में आई जो 'मानव' का हाथ पकड़े मनु को खोजती हुई आ पहुँची थी। वेदी ज्वाला के प्रकाश में घायल मनु को देख कर श्रद्धा का हृदय उमड़ पड़ा। मनु ने आँखें खोलीं। बिछुड़े मिले। श्रद्धा के स्नेहोपचार ने मनु की आँधी को शांत किया, परन्तु प्रातःकाल सब ने देखा, मनु नहीं है। शान्ति की खोज में वे श्रद्धा, इड़ा और मानव को छोड़ कर कहीं दूर चले गये। (निर्वेद, सर्ग १२)। सारस्वत प्रदेश को त्याग इड़ा, मानव और श्रद्धा मनु की खोज में निकले और मंदाकिनी के किनारे एक पर्वत प्रदेश में तप करते हुए मनु मिल गये। श्रद्धा मनु को ज्ञान, कर्म और भाव-लोक (त्रिपुर) का दर्शन कराती है और दोनों प्राणी इसी संधिभूमि में आनन्द की साधना करते हैं (रहस्य, १३) इड़ा और मानव इन संसार-त्यागी महान् आत्माओं से मिलने आते हैं। मनु मानव को उपदेश देते हैं। प्रकृति के मादन दृश्य के साथ पटाक्षेप (आनन्द १४)।

स्पष्ट है, केवल कथा-वस्तु के नाम पर विशेष मौलिकता नहीं है। जैसा भूमिका में कहा गया है, कथा पौराणिक सूत्रों से आगे बढ़ती है। "श्रद्धा और मनु के सहयोग से मानवता के विकास की कथा को रूपक के आवरण में चाहे पिछले काल में मान लेने का वैसा ही प्रयत्न हुआ है, जैसा कि सभी वैदिक इतिहासों के साथ निरुक्त के

द्वारा किया गया, परन्तु मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्त्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की अनुश्रुति में दृढ़ता से मानी गई है। इसीलिए वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष मानना उचित है।" (आमुख, ३) "यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बड़ा ही भावमय और श्लाध्य है।" (४ वही, देवगण) के उच्छृङ्खल स्वभाव, अर्थात् निर्बाध आत्मतुष्टि में अंतिम अध्याय लगा और मानवीय भाव अर्थात् श्रद्धा और मनन का समन्वय होकर प्राणी का एक नये युग की सूचना मिली। इस मन्वन्तर के प्रवर्त्तक मनु हुए" (वही, ४)। "श्रद्धा काम-गोत्र की बालिका है, इसीलिए श्रद्धा नाम के साथ उसे कामायनी भी कहा जाता है" (वही, ५)। मनु प्रथम पथ-पदर्शक और अग्निहोत्र प्रज्वलित करने वाले तथा अन्य कई वैदिक कथाओं के नायक हैं × × × जलप्लावन का वर्णन शतपथ ब्राह्मण के प्रथम कांड के ८वें अध्याय से आरम्भ होता, जिसमें उनकी नाव के उत्तरगिरि हिमवान में पहुँचने का प्रसंग है। वहाँ ओघ के जल का अवतरण होने पर मनु भी जिस स्थान पर उतरे उसे मनोरवसर्पण कहते हैं" (वही, ५-६)। श्रद्धा के साथ मनु का मिलन होने के बाद उसी निर्जन प्रदेश में उजड़ी हुई सृष्टि को फिर से आरम्भ करने का प्रयत्न हुआ। किन्तु असुर पुरोहित के मिल जाने से पशुबलि की। इस यज्ञ के बाद मनु में जो पूर्व परिचित देव-प्रवृत्ति जाग उठी, उसने इड़ा के सम्पर्क में आने पर उन्हें श्रद्धा के अतिरिक्त एक दूसरी ओर प्रेरित किया।

अनुमान किया जा सकता है कि बुद्धि का विकास, राज्य—स्थापना आदि इड़ा के प्रभाव से ही मनु ने किया। फिर तो इड़ा पर भी अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा के कारण मनु को देवगण का कोप-भाजन होना पड़ा (वही, ७)।

इस वैदिक आख्यान और पौराणिक गाथा को निरुक्तकारों ने सांकेतिक रूप देने का प्रयत्न किया।

मनु = मन

श्रद्धा = श्रद्धा

कामायनी = काम (इच्छा) की जाया

इड़ा (इला) = बुद्धि

इड़ा मनुष्यों का शासन करती है—इड़ा मकृण्वन्मनुषस्य मानसीम १—३१—११ ऋग्वेद ।

स्पष्ट है कि इन संकेतों के आधार पर एक विशद रूपक की सृष्टि हो सकती है। मनु को श्रद्धा का सहज ही परिचय होता है, श्रद्धा सहज ही वरण्य है, और मानव इसी की संतान है। प्रगति का मूल मंत्र यही है कि मन श्रद्धा-सम्पन्न होकर आगे बढ़े परन्तु मन और श्रद्धा के बीच में एक महान व्यवधान के रूप में आती है 'इड़ा'। बुद्धि और श्रद्धा का द्वन्द्व चलता ही रहता है। मन और श्रद्धा के सहयोग से जिस सृष्टि का जन्म होता है, उसे असुर (अहं) भाव नष्ट कर देता है। देवसृष्टि में आसुरी आनन्दभाव का मिश्रण मानवता का ह्रास है। आसुरी आनन्दभाव में प्रेम के स्थान पर वासना और त्याग के स्थान पर आत्मतृप्ति है। प्रेम और त्याग की मूर्ति श्रद्धा (आत्म-समपर्ण) को छोड़कर मनु का चले जाना इसी संघर्ष का प्रतीक है।

इड़ा के संयोग से मनु दूसरी सृष्टि रचते हैं। वह है बुद्धिवादी विज्ञानमयी सृष्टि। इस विज्ञानमयी ऐश्वर्यशाली सृष्टि का मनु ने बड़ा सुन्दर चित्रण किया है—

> मनु का नगर बसा है सुन्दर सहयोगी हैं सभी बने
> दृढ़ प्राचीरों में मन्दिर के द्वार दिखाई पड़े घने
> वर्षा-धूप शिशिर में छाया के साधन सम्पन्न हुए
> खेतों में हैं कृषक चलाते हल प्रमुदित श्रम-स्वेद सने

उधर धातु गलते, बनते हैं आभूषण औ' अस्त्र नये
कहीं साहसी ले आते हैं मृगया के उपहार नये
पुष्प-लावियाँ चुनती हैं वनकुसुमों की अर्ध विकच कली
गध चूर्ण था लोध कुसुमरज, जुटे नवीन प्रसाधन थे
घन के आघातों से होती जो प्रचंड ध्वनि रोष भरी
तो रमणी के मधुर कंठ से हृदय मूर्च्छना उधर खड़ी
अपने वर्ग बना कर श्रम का करते सभी उपाय वहाँ
उनकी मिलित प्रयत्न प्रथा से पुर की थी दिखती निखरी
देशकाल का लाघव करते थे प्राणी चंचल से हैं
उसका धन एकत्र कर रहे जो उनके सम्बल में हैं
बढ़ा ज्ञान-व्यवसाय, परिश्रम बल की विस्तृत छाया में
नर-प्रयत्न से ऊपर आवें जो कुछ वसुधातल में
सृष्ट बीज अंकुरित, प्रफुल्लित, सफल हो रहा हरा-भरा
प्रलय-बीज भी रक्षित मनु से वह फैला उत्साह-भरा
आज सचेतन प्राणी अपनी कुशल कल्पनाएँ करके
स्वालम्ब की दृढ़ धरती पर खड़ा, वही अब नहीं डरा

परन्तु बुद्धि (इड़ा) मन पर राज करती है, उसके शासन में नहीं आती। इसी से मन (मनु) क्षोभ से पीड़ित रहते हैं। वह कहता है—

नहीं; अभी मैं रिक्त रहा।
देश बसाया पर उजड़ा है सूना मानस देश यहाँ
सुन्दर मुख, आँखों की आशा, किन्तु हुए यह किसके हैं
एक बाँकपन प्रतिपद शशि का, भरे भाव कुछ रिसके हैं
कुछ अनुरोध मान मोचन का करता आँखों का संकेत
बोल अरी मेरी चेतनते! तू किसकी, ये किसके हैं?

मनु में इड़ा (बुद्धि) को स्ववश करने की लालसा अत्यन्त तीव्रता से जाग्रत हो जाती है। इड़ा मनु (मन) की दुहिता है। उस पर

अधिकार करने की प्रवञ्चना के कारण प्रकृति में विस्फोट होता है। आत्मजा प्रजा के प्रति कुत्सित भाव! इड़ा-व्यापी चेतना में विद्रोह की ज्वाला जल उठी।

आहत मनु को इस बार इड़ा (बुद्धि-व्यापार) से घृणा हो जाती है। श्रद्धा उन्हें एक बार फिर सहारा देती है। इड़ा (बुद्धि) प्रताड़ित मनु को श्रद्धा ही तो सान्त्वना दे सकती है। उन्हें श्रद्धा के प्रति अपने अत्याचार की याद आती है और वे भाग जाते हैं। उधर इड़ा श्रद्धा से क्षमा-याचना करती है। इस प्रकार (इड़ा) बुद्धि का श्रद्धा से व्यवहार कर लेखक एक नये समन्वय की ओर संकेत करता है। इड़ा (बुद्धि) कहती है—

अग्रसर हो रही यहाँ फूट
सीमाएँ कृत्रिम रही टूट
श्रम भाग वर्ग बन गया जिन्हें
अपने बल का है गर्व उन्हें
नियमों की करनी सृष्टि जिन्हें
विप्लव की करनी वृष्टि उन्हें
सब मत्त पिये लालसा घूँट
मेरा साहस अब गया छूट
मैं जनपद कल्याणी प्रसिद्ध
अब अवनति कारण हूँ निषिद्ध
मेरे सुविभाजन हुए विषम
टूटते नित्य बन रहे नियम
नाना केन्द्रों में जलधर सम
घिर हट, बरसे ये उपलोपम
यह ज्वाला है इति है समिद्ध
आहुति बस चाह रही समृद्धि

(दर्शन)

श्रद्धा मानव (मनु-श्रद्धा पुत्र) और इड़ा को छोड़ कर मनु की खोज में निकलती है। वह कहती है—

हे सौम्य, इड़ा का शुचि दुलार
हर लेगा तेरा व्यथा-भार

यह तर्कमयी ! तू श्रद्धामय
तू मननशील, कर कर्म अभय
इसका तू सब संताप निचय
हर ले, हो मानव भाग्य उदय

सब की समरसता कर प्रचार
मेरे सुत सुन मा की पुकार

(दर्शन)

तर्क (इड़ा), श्रद्धा (श्रद्धा) और मनन (मनु) पूर्ण कर्म-निरत मानव ही नये संसार की दाग़-बेल डालेगा—यही कवि को वांछित है। दार्शनिक परिभाषा में इसे ज्ञान, भाव और कर्म की त्रिमूर्ति का एकीकरण कह सकते हैं। इस एकीकरण में ही आनन्द का चिर विलास है। ताण्डव नृत्य पर नटेश (शंकर) सत्ता में व्याप्त महानन्द के प्रतीक हैं। इस सत्य तक पहुँचनेवाली श्रद्धा ही है जो मनु का नेतृत्व करती है और उन्हें इच्छा (इड़ा) ज्ञान (मनु) और भाव के त्रिकोण के बीच में आनन्द पिंड (जीव की चिदानन्दमयी सत्ता) का दर्शन कराती है। श्रद्धा आनन्द की प्रेरणा-शक्ति है। इसी के इंगित से ज्ञान, इच्छा और कर्म में समन्वय स्थापित होता है। ज्ञान, कर्म और भाव (इच्छा) के अप्रतिहत आलिंगन को ही अमृत-तत्त्व (जीवन की पूर्णता) कहेंगे। तीनों का अलग-अलग रहना मृत्यु है, दुःख है। इसी त्रिपुर को वध करने के कारण शिव त्रिपुरारी हैं। आनन्द (शिव) में ज्ञान, भाव और कर्म के त्रिगुणों का परिहार है।

'कामायनी' का अपना एक सन्देश है। उसे हम दार्शनिक पक्ष नहीं कह सकते—जीव, आत्मा, परमात्मा जैसे गंभीर विषयों पर कवि को कुछ भी कहना नहीं है। आधुनिक जिज्ञासा उतनी आध्यात्मिक नहीं है, जितनी आधिभौतिक, अतः आज के कवि के लिए जीवन-दर्शन ही सब कुछ है। मनुष्य अपनी नैसर्गिक विभिन्न शक्तियों का प्रयोग कैसे करे? उसके जीवन का क्या लक्ष्य हो? वैयक्तिक और सामूहिक चेतना में समन्वय कैसे स्थापित हो? ज्ञान, श्रद्धा, कर्म इन त्रिसत्यों को किस अनुपात में ग्रहण किया जाये। वर्तमान युग विज्ञान-मयी तर्क प्रवीण-बुद्धिमत्ता का युग है। पिछला युग श्रद्धामूलक विश्वास का युग था। तब भाव की विजय थी, अतः तर्क (बुद्धि) की। प्रसाद ने दोनों युगों में ठीक पटरी बिठाने की चेष्टा की है। वर्तमान सभ्यता विज्ञान-प्रधान बुद्धि-जीवी है—इसीलिए अधिकारों पर बल है, और वर्ग-संघर्ष के बादल चारों ओर उमड़ रहे हैं। प्रसाद का सन्देश है कि विज्ञान और बुद्धि की अपनी सीमाएं हैं—ये असुर भाव को जाग्रत कर सकते हैं। देवभाव की जाग्रति के लिए श्रद्धा की ओर देखना होगा। आनन्द ही सत्य है। आनन्द शिव (कल्याणमूर्ति) भी है। इसी आनन्द की प्राप्ति भावी जीवन-दर्शन होगा। इसके लिए हृदय-बुद्धि का सामंजस्य आवश्यक है। इड़ा (बुद्धि) और श्रद्धा के सहयोग से ही मानव (मननशील प्राणी) सच्चे स्वर्ग सुख की प्राप्ति कर सकेगा। ध्येय न इड़ा है, न श्रद्धा, आनन्द है। इस विश्व के मूल में आनन्द ही है, जिसके प्रतीक रूप में ऋषियों ने शंकर के तांडव-नृत्य की कल्पना की है। प्रत्येक जीव इस महानन्द का प्रतीक है। स्फुलिंग है, जिस प्रकार ज्वाला अरणि-द्वारा प्रगट होती है, उसी प्रकार श्रद्धा-बुद्धि के समन्वय से युक्त जीवन में आनन्द की अग्नि स्वतः फूट पड़ेगी। जीवन के भीतर का आनन्द बाहर प्रगट होगा और वह इस विश्व-प्रपञ्च में शिव (कल्याण) के तांडव-नृत्य (आनन्दोल्लास) का दर्शन करेगा। श्रद्धा के शब्दों में—

चिति का स्वरूप यह नित्य जगत
वह रूप बदलता है शत शत
कण विरह-मिलन-मय नृत्य-निरत
उल्लासपूर्ण आनन्द सतत
तल्लीनपूर्ण है एक राग
झंकृत है केवल जाग जाग

(दर्शन)

इस प्रकार "कामायनी एकांगी, अव्यावहारिक, निर्बल तथा ह्रासो-न्मुख रूढ़ि के स्थान पर, व्यापक और बहुमुखी जीवन-दृष्टि का संदेश सुनाती और नियोजना करती है" (नन्ददुलारे वाजपेयी—'जयशंकर प्रसाद' पृ० ८८) । मानव-दर्शन का पहला सफल प्रयोग 'कामायनी' में हुआ है ।

मनु मनस्तत्त्व के प्रतीक हैं । स्वयं मनु अपूर्ण हैं जब तक श्रद्धा से उनका योग नहीं होता । मनस्तत्त्व पर जब श्रद्धा की छाप पड़ती है, तो सहज मानव-भाव का जन्म होता है । इस श्रद्धास्पद सहज मानव-भाव (मनसतत्त्व+श्रद्धा) को इड़ा (बुद्धि) साथ सारस्वत (बौद्ध) प्रदेश का शासन सौंप दिया जाता है । इड़ा मानव की सौतेली माँ है । मनु के नाते वह मानव-भाव का पोषण भी करती है । मनस्तत्त्व श्रद्धा और बुद्धि के सहारे कर्मपथ को पहचान कर आगे बढ़े, यह प्रसाद का संदेश है । इसी से यह कामायनी की कथा तो है ही, मनुष्य के क्रियात्मक, बौद्धिक, भावात्मक विकास में सामंजस्य स्थापित करने का अपूर्व काव्यात्मक प्रयास भी है (वही, ८५) । 'कामायनी' मनु (मन) के विकास की कथा है । मनु (मन) का सहज नर-भाव है चिंता (मस्तत्त्व) । शुद्ध देवभाव में तो चिंता है ही नहीं, मन अविकारी स्पन्दनमात्र है । देव-भाव के नाश (जल-प्लावन, प्रलय) के बाद मन में विकार (चिंता) का उदय होता है । अतः नर-भाव से मन का एकांतिक गुण चिंता ही गया है ।

काम (इच्छा)-कुमारी श्रद्धा ही इस विकार (चिंता) को दूर कर सकती है। परन्तु श्रद्धा में रंगीनी नहीं, इड़ा में वह है। अतः मनु इड़ा के चक्र में जब तक प्रताड़ित नहीं होते, तब तक श्रद्धा के वास्तविक मूल्य को नहीं समझते। तब श्रद्धा ही उन्हें इड़ा (बुद्धि) के विज्ञानमय वात्याचक्र से निकाल कर शुद्ध भाव-भूमि पर खड़ा करती है। मनु फिर भी श्रद्धा से अलग रह स्वतंत्र मार्ग निकालना चाहते हैं। यह असम्भव है। श्रद्धा ही उन्हें उंगली पकड़ कर आगे बढ़ाती है। भावलोक, ज्ञानलोक और कर्मलोक (सत, रज, तम) के त्रैत (त्रिपुरी) में होकर मन आनन्द की प्रकृत भूमि पर पहुँचता है। यही लक्ष्य है। ज्ञानभूमि, भावभूमि, और कर्मभूमि में संघर्ष ही आधुनिक मानव की विडम्बना है। श्रद्धा ही इस संघर्ष को दूर कर सकती है। श्रद्धा की मुस्कान से त्रिपुर (त्रैत) का अन्त होता है। तब श्रद्धायुत मन (मनु) अपूर्व तन्मयता (दिव्य अनाहत) का अनुभव करता है। जहाँ तक संसार की बात है, इड़ा और श्रद्धा के योग से उसको चलाना होगा। काव्य के अन्त में कामायनी के पुत्र (मानव) और पुत्रवधू (इड़ा) का अभिषेक इसी का प्रतीक है। परन्तु अध्यात्म जगत में श्रद्धा (भाव), ज्ञान (बुद्धि) और कर्म से आगे दिव्यानन्द (शिव-ताण्डव) की तन्मयता ही ध्येय है।

इस सम्बंध में प्रसाद के तीनों जगतों के चित्र देखने योग्य हैं। भावलोक का चित्र—

शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध की
पारदर्शिनी सुघड़ पुतलियाँ;
चारों ओर नृत्य करती ज्यों
रूपवती रंगीन तितलियाँ
इस कुसुमाकर के कानन के
अरुण पराग पटल छाया में

इठलातीं सोतीं जगतीं ये
अपनी भावमयी माया में
वह संगीतात्मक ध्वनि इनकी
कोमल अँगड़ाई है लेती

मादकता की लहर उठाकर
अपना अम्बर तर कर देती
आलिंगन-सी मधुर प्रेरणा
छू लेती, फिर सिहरन बनती ;

नव अलम्बुषा की व्रीड़ा सी
खुल जाती है, फिर जा मुँदती
यह जीवन की मध्यभूमि है
रसधारा से सिंचित होती ;

मधुर लालसा की लहरों से
यह प्रवाहिका स्पंदित होती
जिसके तट पर विद्युत्कण से
मनोहारिणी आकृति वाले

छायामय सुषमा में विह्वल
विचर रहे सुन्दर मतवाले
सुमन-संकुलित भूमिरंध्र से
मधुर गंध उठती रस-भीनी ;

वाष्प अनन्य फुहारे इसमें
छूट रहे, रस-बूँदें झीनी
घूम रही है यहाँ चतुर्दिक
चल चित्रों-सी संसृति छाया

जिस आलोक-बिन्दु को घेरे
वह बैठी मुस्क्याती माया

ज्ञानलोक का चित्र—

प्रियतम, यह तो ज्ञान क्षेत्र है
सुख दुःख से है उदासीनता
यहाँ न्याय निर्मम चलता है
बुद्धि-चक्र, जिसमें न दीनता
अस्ति-नास्ति का भेद, निरंकुश
करते ये अणु तर्क युक्ति से
यहाँ प्राप्य मिलता है केवल
तृप्ति नहीं, कर भेद बाँटती
बुद्धि, विभूति सकल सिकता सी
प्यास लगी है, ओस चाटती
न्याय, तपस, ऐश्वर्य में पगे
ये प्राणी चमकीले लगते;
इस निदाघ-मरु में, सूखे से
स्रोतों के तट जैसे जगते
मनोभाव से काय-कर्म का
समतोलन में दत्त-चित्त का
ये निस्पृह न्यायासन वाले
चूक न सकते तनिक वित्त से
अपना परिमित पात्र लिये ये
बूँद-बूँद वाले निर्झर से,
माँग रहे हैं जीवन का रस
बैठे यहाँ पर अजर-अमर से

× × ×

सामञ्जस्य चले करने ये
किन्तु विषमता फैलाते हैं;
मूल स्वयं कुछ और बताते

इच्छाओं को झुठलाते हैं

कर्मलोक का चित्र—

कर्मलोक सा घूम रहा है
यह गोलक बन नियति-प्रेरणा,
सब के पीछे लगी हुई है
कोई व्याकुल नयी एषणा
श्रममय कोलाहल, पीड़नमय
निकल प्रवर्तन महामन्त्र का
क्षण-भर भी विश्राम नहीं है
प्राण दास है क्रियातन्त्र का
भाव-राज्य के सकल मानसिक
सुख यों दुःख में बदल रहे हैं
हिंसा गर्वोन्नत हारों में
ये अकड़े अणु अटल रहे हैं

× × ×

नियति चलाती कर्म-चक्र यह
तृष्णा-जनित ममत्व कामना
पाणिपादमय पंचभूत की
यहाँ हो रही है उपासना
यहाँ सतत संघर्ष, विफलता
कोलाहल का यहाँ राज्य है
अंधकार में दौड़ लग रही
मतवाला यह सब समाज है

इन 'लोकों' से ऊपर है 'शिव' का आनन्द लोक—

क्षण भर में सब परिवर्तित
अणु-अणु थे विश्व-कमल के

पिंगल पराग से मचले
आनन्द सुधारस छलके
अति मधुर गंध वह बहता
परिमल बूँदों से सिंचित
सुख स्पर्श कमल केसर का
कर आया रज से रंजित

× × ×

वल्लरियाँ नृत्य-निरत थीं
बिखरी सुगंध की लहरें
फिर वेणुरंध्र से उठ कर
मूर्च्छना कहाँ अब ठहरी ?
गूँजते मधुर नूपुर से
मदमाते होकर मधुकर
वाणी की वीणा ध्वनि-सी
भर रही शून्य में झिलकर

(आनन्द)

इस प्रकार 'प्रसाद' शैवागमों के सूत्रों को इकट्ठा कर एक निश्चित 'आनन्दवाद' की स्थापना करते हुए दिखाई देते हैं। 'प्रवृत्ति' और निवृत्ति (गृहस्थ और वैराग्य) की बंधी हुए लीकों के अतिरिक्त 'आनन्दवाद' की एक धारा प्राचीन आर्यों के समय से चली आई है इसमें 'नीतिवाद' (पाप-पुण्य) का पचड़ा नहीं। संत-भक्त-साहित्य में निवृत्ति की ही महत्ता है। संतों में केवल तुलसी ने ही दोनों को ग्राह्य बनाया है, परन्तु बल निवृत्ति पर ही है। मार्ग कोई भी हो, मनुष्य 'मर्यादा-भाव' (मर्यादा-मार्ग) से रहे, यह 'मध्यम मार्ग' है। प्रसाद ने पीछे लौट कर इन्द्र के समय की ओर इंगित किया। आर्यों और शैवागमों के आनन्दवाद को आधुनिकता का रूप देकर उन्होंने

वर्तमान सभ्यता को एक नया पथ दिया है। उनकी यह दार्शनिक देन शताब्दियों से 'दुःखवाद' (मायावाद) में विश्वास करने वाले भारत के लिए कितनी महत्वपूर्ण है, यह सुधी आलोचक समझें। जहाँ करुणा (दुःख, पश्चात्ताप) की भावना मनुष्य को छोटा करती है और उसे आत्म-सुखी बनाती है, वहाँ आनन्द की भावना उसे सम्पूर्ण विश्व से योजित करती है।

(४)

'कामायनी' का एक दूसरा पक्ष भी है—इस पक्ष के नाते भी प्रसाद की यह कृति महत्वपूर्ण है। ऊपर हम 'रोमांटिक काव्य' (स्वच्छन्दतावाद) की विवेचना कर चुके हैं। प्रसाद की कामायनी इस 'वाद' की अन्यतम निधि है। इस 'वाद' की शक्ति और दुर्बलता का एक साथ प्रदर्शन यहीं दिखलाई पड़ता है।

स्वच्छंदतावाद के कवि जीवन और प्रकृति को मुख्यतः आंशिक और अपूर्ण रूप में देख सके हैं। एक सम्पूर्ण चित्र उपस्थित करने का पहला प्रयत्न 'कामायनी' है। कथा एवं कथा-विकास की दृष्टि से यह कृति महत्वपूर्ण नहीं कही जा सकती। सारी कथा का कथा-रूप और रूपक-रूप एक साथ चलाने का प्रयत्न हुआ है। इससे कथा का उपयोगी विकास नहीं हो सका और कथा की स्थूलता रूपक में बाधक होती है। सच तो यह है कि कामायनी की भूमि, भाषा, शैली, छंद—सभी नई वस्तुएँ हैं। इतने पक्षों में एक साथ नवीनता होने से काव्य जन-मन-भूमि से अलग जा पड़ा है। 'मानस' के कवि की लोकप्रियता का कारण यह है कि उसने सभी भूमियों में एकांत मौलिकता का आग्रह नहीं किया है। रामकथा जनपरिचित है। छन्दों को अवधी के सूफ़ी कवियों और उनसे भी पहले ही सिद्ध जैन और सामंत काव्य ने जनता को परिचित करा दिया था। भाषा अभिधात्मक है और प्रसादपूर्ण, अतः मध्ययुग के ग्रामीण कृषक मन को भी इसके समझने में कोई कठिनाई नहीं पड़ी। जहाँ तक राम के ब्रह्मवाद, रामभक्ति, रामभक्तिमय मर्यादा-प्रधान जीवन और

ज्ञान के ऊपर भक्ति की स्थापना की बात है, वहाँ तक तुलसी एकदम मौलिक ही नहीं हैं। 'प्रसाद' की रचना में मौलिकता के पत्तों की अनेकता उसकी लोकप्रियता में बाधक होगी, यह निश्चय है। उनके इस छोटे-से काव्य में कथा मौलिक ही नहीं है, रूपक तत्त्वों और मानसिक हलचलों पर खड़ी होने के कारण, वह नितांत जटिल है। उसकी रूपकात्मकता उसकी सरसता में बाधकहोती है और उसका जीवन-दर्शन आत्मा-परमात्मा विषयक न होने पर भी एकांततः सरल नहीं है।

स्पष्ट है कि कथा में नहीं, काव्य की शैली और उसकी आत्मा में परिवर्तन लाने की दृष्टि से प्रसाद अधिक महत्त्वपूर्ण हैं—"उनमें एक नई कल्पनाशीलता, नूतन जागरूक चेतना, मानस वृत्तियों की सूक्ष्मतर और प्रौढ़तर पकड़, एक विलक्षण अवसाद, विस्मय, संशय और कौतूहल जो नई चेतना का सूक्ष्म प्रभाव है प्रगट हो रहा है। ये ही काव्य में छायावाद के उपकरण बन कर आये। इस नवीन प्रवर्त्तन के मूल में एक स्वातंत्र्य लालसा, शक्ति की अभिज्ञता और सांस्कृतिक द्वन्द की अनिर्दिष्ट स्थिति देख पड़ती है (वही १८)। सब जगह वह बराबर सफल नहीं सही, परन्तु अपने क्षेत्र में उनकी सफलताएँ भी कम नहीं हैं।

प्रसाद के काव्य की सब से सुन्दर चीज़ उनकी उदात्त और सम्पन्न कल्पना है। उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं के रूप में यह 'कामायनी' भर में बिखरी पड़ी है। आधुनिक किसी भी कवि से वह इस क्षेत्र में नूतन, प्रगतिशील और शक्तिवान हैं। पहले ही सर्ग में 'चिन्ता' को कवि की प्रचुर कल्पना अनेक रंग उपस्थित करती है—

ओ चिन्ता की पहली रेखा
अरी विश्ववन की व्याली

ज्वालामुखी स्फोट के भीषण
प्रथम कम्प सी मतवाली !
हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल रेखा
हरी-भरी सी दौड़-धूप, ओ
जलमाया की चल-रेखा
इस ग्रहकक्षा की हलचल री
तरल गरल की लघु लहरी
जरा अमर जीवन की, और न
कुछ कहने वाली, बहरी !
अरी व्याधि की सूत्र धारिणी
अरी आधि, मधुमय अभिशाप
हृदय गगन में धूमकेतु सी
पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप
अहा ! घिरेगी हृदय लहलहे
खेतों में करका-धन सी
छिपी रहेगी अन्तरतम में
सब के तू निगूढ़-धन सी

(चिंता)

यही कल्पना की प्रचुरता स्वच्छन्द काव्य का प्राण है, परन्तु यही उसे दुर्भेद्य बना देती है। जहाँ अभिव्यंजमा की वक्रता भी आ मिली है, यहाँ साधारण मनीषा चमत्कृत होकर ही रह जाती है जैसे मृत्यु पर लिखी हुई इन पंक्तियों की भंगिमा—

मृत्यु, अरी चिर निद्रे ! तेरा
अंक हिमानी-सा शीतल

तू अनन्त में लहर बनाती
काल-जलधि की-सी हलचल
महानृत्य का विषम सम, अरी
अखिल स्पंदन की तू माप
तेरी ही विभूति बनती है
सृष्टि सदा देकर अभिशाप
अंधकार के अट्टहास-सी
मुखरित सतत चिरंतन सत्य
छिपी सृष्टि के कण-कण में तू
यह सुन्दर रहस्य ही नित्य
जीवन तेरा क्षुद्र अंश है
व्यक्त नील घन-माला में
सौदामिनी-संधि सा सुन्दर
क्षणभर रहा उजाला में

श्रद्धा के प्रथम दर्शन के चित्र आधुनिक साहित्य के नारी-सौन्दर्य अंकन की नई तूलिका ने एक अतीव नूतन क़लम की सृष्टि की है—

मसृण गांधार देश के नील
रोम वाले मेषों के चर्म
ढँक रहे थे उसका वपु कांत
बन रहा था वह कोमल वर्म
नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-बन बीच गुलाबी रंग

आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घन-श्याम
अरुण रविमंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छवि-धाम

या कि नव इन्द्र नील लघु शृङ्ग
फोड़कर धधक रहा हो कांत
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रांत

घिर रहे वे घुँघराले बाल
अंश अवलम्बित मुख के पास
नील घन-शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास

और उस मुखपर वह मुस्क्यान!
रक्त-किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम

नित्य यौवन छवि से ही दीप्त
विश्व की करुण कामना मूर्ति
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड़ से स्फूर्ति

उषा की पहली लेखा कांत
माधुरी से भींगी भर मोद
मद-भरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक द्युति की गोद

(श्रद्धा)

कहीं-कहीं उपमाएँ अत्यन्त नवीन हैं। जैसे उद्भ्रांत मनु प्रथम दर्शन के समय अपना परिचय श्रद्धा को देते हैं—

क्या कहूँ, क्या हूँ मैं उद्भ्रांत ?
विवर में लीन गगन में आज
वायु की भटकी एक तरंग
शून्यता का उजड़ा-सा साज
एक विस्मृति का स्तूप अचेत
ज्योति का धुँधला सा प्रतिविम्ब
और जड़ता की जीवन-राशि
सफलता का संकलित विलम्ब

इस प्रकार के अतीन्द्रिय, मानसिक व्यापारों के उपमान पाठक को सहज ग्राह्य नहीं हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। परन्तु एक स्थान पर इतने नवीन उपमान- प्रयोगों का संग्रह मूर्त्तिमत्ता-प्रधान छायावाद काव्य में भी अन्य स्थान पर उपलब्ध नहीं है।

अनेक स्थान पर कवि नई मूर्तियाँ निर्माण करता है; जैसे श्रद्धा के अलस सौन्दर्य का संकेत है—

माधवी निशा की अलसाई
अलकों में लुकते तारा-सी (काम)

अथवा

कौन हो विश्वमाया कुहुक-सी साकार
प्राण सत्ता के मनोहर भेद-सी सुकुमार

(वासना)

सुन्दर उपमाओं की मदिर मादकता से कामायिनी का पृष्ठ-पृष्ठ सुरभित है। जान पड़ता है, प्रसाद ने स्वयं इस रचना में छन्द-छन्द पर रुक कर आनन्द प्राप्त किया है और प्रत्येक छवि को कल्पना की

कूँची में सँवार-सँवार कर देखा है—जैसे—

श्याम नभ में मधु किरन-सा फिर वही मृदु हास
सिंधु की हिलकोर दक्षिण का समीर विलास
कुन्ज में गुन्जरित कोई मुकुल-सा अव्यक्त
लगा कहने अतिथि, मनु थे सुन रहे अव्यक्त (वासना)
कर्म सूत्र संकेत सदृश थी
सोम लता तब मनु को
चढ़ी शिंजिनी-सी खींचा फिर
उसने जीवन धनु को

(कर्म)

केतकी गर्भ-सा पीला
आँखों में आलस भरा स्नेह
कुछ कृशता नई लजीली थी
कम्पित लतिका-सी लिए देह !

मातृत्व - बोझ से झुके हुए
बँध रहे पयोधर पीन आज
कोमल काले ऊनों की नव
पट्टिका बनाती रुचिर साज
सोने की सिकता में मानों
कालिन्दी बहती भर उसाँस
स्वर्गंगा में इन्दीवर की
या एक पंक्ति कर रही हास
कटि में लिपटा था वसन नवल
वैसा ही हलका बुना नील
दुर्भर थी गर्भ मधुर पीड़ा
झेलती उसे जननी सलील (ईर्ष्या)

रूप के इस प्रकार के स्निग्ध चित्र कामायनी में अनेक मिलेंगे। इड़ा का एक चित्र है—

विखरी अलकें ज्यों तर्क जाल
यह विश्व मुकुट-सा उज्ज्वल तम, शशिखंड सदृश सा स्पष्ट भाल
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढ़ाल
गुञ्जरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा ज्ञान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे, संसृति के नव विज्ञान ज्ञान
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिए
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिये
त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों में थी गति भरी ताल

(इड़ा)

कामायनी की विरह-वेदना का कितना सजीव चित्र है—

कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरन्द रहा
एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमें है रंग कहाँ
वह प्रभात का हीन कला शशि, किरन कहाँ चाँदनी कहाँ
वह संध्या थी, रवि शशि तारा में सब कोई नहीं जहाँ
जहाँ तामरस इन्दीवर या सित सरसिज हैं मुरझाये
अपने नालों पर, वह सरसी श्रद्धा थी, न मधुप आये
जलधर वह जिसमें चपला या श्यामलता का नाम नहीं
शिशिर कला की क्षीण स्रोत वह जो हिमतल में जम जाये
एक मौन वेदना विजय की, झिल्ली की झंकार नहीं
जगती को अस्पष्ट उपेक्षा, एक कसक साकार रही
हरित कुँज की छाया भर थी वसुधा आलिंगन करती
वह छोटी-सी विरह नदी थी जिसका है अब पार नहीं
नील गगन में उड़ती उड़तीं विहग बालिका-सी किरनें

स्वप्न लोक को चलीं थकी सी नींद-सेज पर जा गिरने
किन्तु विरहणीं के जीवन में एक घड़ी विश्राम नहीं
बिजली-सी स्मृति चमक उठी तब जभी लगे तम-घन घिरने
संध्या नील सरोरुह से जो श्याम पराग बिखरते थे
शैल-घाटियों के अंचल को वे धीरे से भरते थे
तृण गुल्मों से रोमांचित नग सुनते उस दुःख की गाथा
श्रद्धा की सूनी सांसों से मिल कर जो स्वर झरते थे
(स्वप्न)

आधुनिक काव्य में नारी के जितने सजीव सुन्दर चित्रकाव्य को मिले हैं, उतने कृष्ण-काव्य की राधा को छोड़कर किसी अन्य नारी चरित्र को नहीं मिले। छायावाद के कवि ने नारी को वासना के गति से उठाकर उसे हृदय-देवी बनाकर अनेक ढंग से उसकी छवि अंकित की। प्रसाद का काव्य नारी-जागरण के युग की कला की सर्वोत्तम निधि है। उसमें अजन्ता की नारी आकृतियों की ऐश्वर्यमयी भाव भंगी नहीं सही, परन्तु उसमें सौन्दर्य की नई परख अवश्य सब कहीं मिलेगी।

५

कामायनी प्रकृति की विशाल भूमिका पर खड़ी है। उसमें जल प्रलय का हाहाकार भी है और वसन्त की मधुरिमा भी। छायावाद काव्य में पंत, निराला और महादेवी ने प्रकृति को नये ढंग से उद्दीप्त कर, सजा-सवाँर कर, सामने रखा है, परन्तु प्रसाद के काव्य में ही प्रकृति अपनी सम्पूर्ण सम्पन्नता को लेकर जाग सकी है। अधिकांश चित्र भावनाओं के घात-संघात से मनोरम होकर सामने आते हैं, जैसे—

मैं था सुन्दर कुसुमों की वह
सघन सुनहली छाया थी

मलयानिल की लहर उठ रही
उल्लासों की माया थी
उषा अरुण प्याला भर लाती
सुरभित छाया के नीचे
मेरा यौवन पीता सुख से
अलसाई आंखें मीचे
ले मकरन्द नया चू पड़ती
शरद प्रात की शैफाली
बिखराती सुख ही, संध्या की
सुन्दर अलकें घुँघराली
(निर्वेद)

यह चन्द्रहीन की एक रात
जिसमें सोया था स्वच्छ प्रात
उजले उजले तारक झलमल
प्रतिबिम्बित सरिता वक्षस्थल
धारा बह जाती बिम्ब अटल
सुन्दरता ला धीरे पवन पटल
चुपचाप खड़ी थी वृक्ष पाँत
सुनती जैसे कुछ निजी बात
(दर्शन)

करती सरस्वती मधुर नाद
बहती थी श्यामल घाटी में निर्लिप्त भाव सी अप्रमाद
सब उपल उपेक्षित पड़े रहे, जैसे वे निष्ठुर, जड़ विषाद
वह थी प्रसन्नता की धारा जिसमें था केवल मधुर गान
थी कर्म निरंतरता-प्रतीक, चलता था स्ववश अनन्त ज्ञान
हिम शीतल लहरों का रह-रह कूलों से टकराते जान।

आलोक अरुण किरनों का उनपर अपनी छाया बिखराता
अद्भुत था, निज निर्मित पथ का वह पथिक चल रहा निर्विवाद

कहता जाता कुछ सुसंवाद
प्राची में फैला मधुर राग

जिसके मंडल में एक कमल खिल उठा सुनहला भर पराग
जिसके परिमल से व्याकुल हो श्यामल कलरव सब उठे जाग
आलोक रश्मि से बुना उषा अंचल में आन्दोलन अमन्द
करता प्रभात का मधुर पवन सब ओर बितरने को अमन्द
उस भव्य फलक पर नवल चित्त-सी प्रगट हुई सुन्दर बाला
वह नयन-महोत्सव की प्रतीक, अम्लान मालिन की नव माला
सुषमा का मंडल सुरभित-सा, बिखराता संसृति पर सुराग
सोया जीवन का तम विराग

(इड़ा)

धीरे धीरे जगत चल रहा
अपने उस रज्जु-पथ में
धीरे धीरे खिलते तारे
मृग जुतते विधु रथ में
अंचल लटकाती निशीथिनी
अपना ज्योत्सनाशाली
जिसकी छाया में सुख पाये
सृष्टि वेदना वाली
उच्च शैल शृङ्गों पर हँसती
प्रकृति चंचला बाला
धवल हँसी बिखराती
फैला मधुर उजाला (कर्म)

सृष्टि हँसने लगी आँखों में खिला अनुराग
राग-रंजित चन्द्रिका थी, उड़ा सुमन पराग
और हँसता था अतिथि मनु का पकड़ कर हाथ
चले दोनों, स्वप्न-पथ में स्नेह-सम्बल साथ
देवदारु निकुंज गह्वर सब सुधा में स्नात
सब मानते एक उत्सव जागरण की रात
आ रही थी मदिर भीनी माधवी की गंध
पवन के घर घिरे पड़ते थे बने मधु अंध
शिथिल अलसाई करम की सेज पर विश्रांत
उसी झुरमुट में हृदय की भावना थी भ्रांत
जहाँ छाया सृजन करती थी कुतूहल कांत (वासना)

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कामायनी' की कथावस्तु प्रकृति की विराट रंग भूमि पर चित्रित की गई है। प्रकृति के महाप्रलय विक्षेप से प्रारम्भ कर हिमालय के शांत प्रदेश में नैसर्गिक सुख ऐश्वर्य के बीच में आनन्द का हास-विलास—इतनी बड़ी कामयनी का चित्रपटी है। प्रसाद ऐश्वर्यशील प्रकृति—चित्रों के लिए प्रसिद्ध हैं। 'कामायिनी' में ऐसे चित्रों की कमी नहीं है। हमने देखा है कि अपनी कविता के आरम्भ काल से ही प्रसाद प्रकृति को आलम्बन मानकर लिखते रहे हैं। 'कामायिनी' के प्रकृति-चित्र विश्वकाव्य के सर्वश्रेष्ठ प्रकृति-चित्रों के सन्मुख रखे जा सकते हैं। अंतिम चित्र देखिए—

अति मधुर गंध वह बहता
परिमल बूँदों से सिंचित
सुख स्पर्श कमल केसर का
कर आया रज से रंजित
जैसे असंख्य मुकुलों का
मादन विकास कर आया

उनके अछूत अधरों का
कितना चुम्बन भर लाया
रुक-रुक कर कुछ इठलाता
जैसे कुछ हो वह भूला
नव कनक-कुसुम-रज धूसर
मकरन्द जलद-सा फूला
जैसे बन-लक्ष्मी ने ही
बिखराया हो केसर रज
था हेमकूट हिमजल में
झलकाता परछाईं निज
संसृति के मधुर मिलन के
उच्छ्वास बना कर निज दल
चल पड़े गगन आँगन में
कुछ गाते अभिनव मंगल
वल्लरियाँ नृत्य निरत थीं
बिखरी सुगंध की लहरें
फिर वेणुरंध्र से उठ कर
मूर्छना कहाँ अब ठहरे

(आनन्द)

इस आनन्द-चित्र के साथ 'कामायनी' की परिसमाप्ति है। क्षुब्ध मन क्षुब्ध प्रकृति से ऊपर उठ कर आनन्दमय नैसर्गिक लोक में शांति पाते हैं।

(६)

'कामायनी' की शैली एक आनन्दमय कवि की शैली, स्वच्छन्द क्रीड़ा-शैली है। इस शैली के पीछे प्रसाद का व्यक्तित्व और उनका जीवन-दर्शन है। प्रसाद ऊपर से निर्मम और निर्लेप व्यक्ति थे, परन्तु

जैसा नन्ददुलारे वाजपेई ने लिखा है वे 'बनारसी रंग' में मस्त रहते थे। ('व्यक्ति की झलक'—जयशङ्कर प्रसाद) । इस बनारसी रंग का मतलब है, स्वयम् अपने अस्तित्व में आनन्द का अनुभव करना। वे 'आनन्दवादी' कवि थे। इसी से जीवन का आनन्द उनकी कृतियों में है विराग की समरसता नहीं। उनका साहित्य में जीवन के सौन्दर्य, कल्पना और शक्तिमती उदात्त भावनाओं से सम्बद्ध करने का स्वस्थ प्रयत्न है। जहाँ-जहाँ विलास और पलायनवादी प्रवृत्तियों का ढूँढ़ना अच्छा नहीं। वहाँ सूत्र प्रसाद की जीवन-सम्बन्धी धारणा के हाथ में चला जाता है।

प्रसाद की शैली में जो बात सब से ऊपर गिरती है, वह उनकी मादकता है। उनकी शैली में नीरसता कहीं नहीं है। 'कामायनी' वृहद ग्रंथ होने पर भी कहीं नीरस नहीं लगता। उसका कथानक शिथिल है। पहले कदाचित् प्रसाद ने केवल कथा सूत्र भर लेकर प्रेम-काव्य लिखने का प्रयत्न किया, परन्तु बाद में उन्होंने रूपक का सहारा लेकर इस कथा को जीवन दर्शन का रूप दे दिया। इस प्रकार कथा की अविच्छिन्न धारा में बाधा पड़ती। फल यह हुआ कि काव्य का उत्तर भाग जटिल दार्शनिक तर्कनाओं से बोझिल हो उठा है। परन्तु पहले भाग में काव्य और कला के उच्चतम तत्त्व मिलेंगे और प्रसाद की भारती पग-पग पर झंकृत होती आगे बढ़ेगी।

प्रसाद के सम्बंध में यह नहीं भूलना होगा कि वे नाटककार हैं, अतः उन्होंने साधारण महाकाव्य की शैली नहीं अपनायी। उन्होंने नाटकीयता का कभी समावेश कर दिया है, जो काव्य-परिपाटी के बाहर की चीज है। कथा-विकास में इससे कुछ बाधा पड़ती है, परन्तु नई होने के कारण यह शैली उपार्जनीय है। बहुतकर इस-लिये भी कि प्रसाद इतिवृत्तात्मक कथा-काव्य (रोमांस) नहीं लिख रहे। वे सूक्ष्म मनोतत्त्वों के विकास की कथा भी कह रहे हैं। वास्तव

में उन्होंने मनोविज्ञान को कथा-सूत्रों के उपर रख दिया है। सर्गों के शीर्षक ही इसके सबूत हैं :—

१ चिंता, २ आशा, ३ श्रद्धा, ४ काम, ५ वासना, ६ लज्जा, ७ कर्म, ८ ईर्ष्या, ६ इड़ा, १० स्वप्न ११ संघर्ष, १२ निर्वेद, १३-दर्शन, १४ रहस्य, १५ आनन्द। देवत्व से शिथिल होने पर चिन्ता का जन्म हुआ। चिन्ता ने आशा को जन्म दिया। आशा ने मनु (मानव) को श्रद्धा का परिचय कराया। मनु ने श्रद्धा का उपयोग किया (काम, वासना, लज्जा)। इसके बाद मनु अप्रतिहत कर्मस्रोत में बहने लगते हैं और श्रद्धा से उसके सहज संतोष और अमृत-तत्त्व के कारण उन्हें घृणा होने लगती है (कर्म, ईर्ष्या)। पुरुष कर्म प्रधान है। नारी संतोषमयी। श्रद्धाहीन हो मनु (मन) इड़ा (बुद्धि) का सहारा लेकर नए जगत का निर्माण करता है। (इड़ा, स्वप्न)। इस श्रद्धाविहीन अनात्मवादी कर्म-प्रधानता का वह हुआ जो होता (संघर्ष)। सहज श्रद्धा से हीन जनता बुद्धि के जड़तामय जटिल जाल के प्रति विद्रोह कर उठती है (संघर्ष)। इस संघर्ष के कारण मनु (मन) में निर्वेद का जन्म स्वाभाविक है (निर्वेद)। मनु (मन) एकदम कर्मविरत हो जाते हैं और कर्म में नहीं, अकर्म में शांति की खोज करते हैं। परन्तु यहाँ भी श्रद्धा के बिना उन्हें शांति की प्राप्ति असम्भव है (दर्शन)। श्रद्धा उन्हें जीवन के समान्वयत्मक रहस्य से परिचित कराती है, कि पूर्ण शांति की प्राप्ति के लिए ज्ञान, कर्म और भाव का संतुलित योग आवश्यक है। बात सीधी-सीधी होने पर भी रहस्य है (रहस्य)। इस ज्ञान-भाव-कर्म समन्वित जीवन से ही मनुष्य को आनन्दयोग की सहज-प्राप्ति होती है। अतः मनु की कहानी मन की कहानी है जो शांति की खोज में श्रद्धा इड़ा (बुद्धि) और कर्म की अलग-अलग साधना करने पर असफलता को प्राप्ति होती है (आनन्द)।

इस प्रकार कथा, रूपक और दर्शनशास्त्र को अलग-अलग रखने से काव्य का चमत्कार कुछ कम अवश्य हो गया है, परन्तु कुछ प्रासांगिक विषय अपने स्थान पर अपूर्व हैं। कवि ने मनोविज्ञान की शैली अपना कर नए सूत्रों का गुम्फन कर दिया है। इन्हीं में एक लज्जा का अत्यन्त सुन्दर प्रकरण है। यह सर्ग लज्जा और नारी के कथोपकथन के रूप में हमारे सामने आता है। लज्जा का ऐसा सुन्दर मनोवैज्ञानिक अध्ययन सारे भारतीय साहित्य में नहीं मिलेगा :—

कोमल किसलय के अंचल में
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती-सी
मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद बिखरता ज्यों
वैसी ही माया में लिपटी
अधरों पर उँगली धरे हुए
माधव में सरल कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए
नीरव निशीथ में लतिका-सी
तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?
कोमल बाहें फैलाए-सी
आलिंगन का जादू पढ़ती
किन इन्द्रजाल के फूलों से
लेकर सुहागकण राग भरे
सिर नीचा कर हो गूँथ रही
माला जिससे मधुधार ढरे ?
पुलकित कदंब की माला-सी

पहना देती हो अन्तर में
झुक जाती है मन की डाली
अपनी फलभरता के डर में
वरदान सदृश हो डाल रही
नीला किरणों से बुना हुआ
यह अंचल कितना हलका-सा
कितने सौरभ से सना हुआ
सब अंग मोम से बनते हैं
कोमलता में बल खाती हूँ
मैं सिमट रही-सी अपने में
परिहास गीत सुन पाती हूँ
स्मित बन जाती तरल हँसी
नयनों में भर कर बाँकपना
प्रत्यक्ष देखती हूँ सब जो
वह बनता जाता है सपना
मेरे स्वप्नों के कलरव का
संसार आँख जब खोल रहा
अनुराग समीरों पर तिरता
था इतराता-सा डोल रहा
अभिलाषा अपने यौवन में
उठती उस सुख के स्वागत को
जीवन भर के बल-वैभव से
सत्कृत करती दूरागत को
किरणों का रज्जु समेट लिया
जिसका आलंबन ले चढ़ती
रस के निर्झर में धँस कर मैं

आनन्द-शिखर के प्रति बढ़ती
छूने में हिचक, देखने में
पलकें आँखों पर झुकती हैं
कलरव परिहास भरी गूँजे
अधरों पर सहसा रुकती हैं

संकेत कर रही रोमाली
चुपचाप बरजती खड़ी रही
भाषा बन भौंहों की काली
रेखा-सी भ्रम में पड़ी रही

इस तरह हम देखते हैं कि प्रसाद की शैली की कुछ मुख्य बातें हैं शैली की मादकता, सम्पन्नता (विलासता), मनोवैज्ञानिकता स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने की प्रवृत्ति, शैली को संस्कृतमयता और कहीं-कहीं तज्जनित जटिलता एवं भावों की लुका-छिपी जो दार्शनिक या गम्भीर जीवनदर्शी ग्रंथ में आवश्यक थी। परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि प्रसादजी की काव्यकला (१९०९—१९३६) छायावाद-काव्य के जन्म और विकास की कहानी है और प्रसादजी छायावादी मूर्त्तिमत्ता, भाव और भाषा के उन्नायकों में प्रधान थे। अतः उनके काव्य को प्रौढ़ता (चाहे उसमें थोड़ी अस्पष्टता भी रही हो) उनके लिए श्रेय ही लायेगी। कौन हिन्दी का कवि है जो अनन्त की रहस्यमयता को इतनी प्रौढ़ता और समर्थता से व्यक्त करता है—

इस विश्व कुहर में इन्द्रजाल
जिसने रच कर फैलाया है ग्रहतारा विद्युत नखत-व्याल
सागर की भीषणतम तरंग-सा खेल रही वह महाकाल
तब क्या इस वसुधा के लघु-लघु प्राणों को करने को सभीत
उस निष्ठुर की रचना कठोर केवल विनाश को रही जीत

तब मूर्ख आज तक क्यों समझे हैं सृष्टि उसे जो नाशमयी
उसका अधिपति ! होगा कोई, जिस तक दुःख की न पुकार गई
सुख नीड़ों को घेरे रहता अविरत विषाद का चक्रवाल
किसने यह पट है दिया डाल

(इड़ा)

किस आधुनिक कवि ने प्रेम और यौवन के आत्मसमर्पण का इतना मादक वर्णन किया है—

सहसा अंधकार की आँधी
उठी क्षितिज से वेग भरी
हलचल से विक्षुब्ध विश्व की
उद्वेलित मानस-लहरी
व्यथित हृदय उस नीले नभ में
छाया-पथ-सा खुला तभी
अपनी मङ्गलमयी मधुर स्मिति
कर दी तुमने देवि, जभी
दिव्य तुम्हारी अमर अमिट छवि
लगी खेलने रँगरेली
नवल हेम लेखा-सी मेरे
हृदय निकष पर खिंची भली
अरुणाचल मन मन्दिर की वह
मुग्ध माधुरी नव प्रतिमा
लगी सिखाने स्नेहमयी-सी
सुन्दरता की मृदु महिमा
उस दिन तो हम जान सके थे
सुन्दर किसको हैं कहते

तब पहचान सके किसके हित
प्राणी सब दुःख-सुख सहते

× × ×

हृदय बन रहा था सीपी-सा
तुम स्वाती की बूँद बनीं
मानस शतदल डोल उठा जब
तुम उसमें मकरन्द बनीं
तुमने इस सूखे पतझड़ में
भर दी हरियाली कितनी
मैंने समझा मादकता है
तृप्ति बन गई वह कितनी

(निर्वेद)

किसी कवि ने कालिदास-स्पर्द्धी ऐश्वर्य का वर्णन किया—

श्रद्धा उस आश्चर्य लोक में मलय-बालिका सी चलती
सिंहद्वार के भीतर पहुँची खड़े प्रहरियों को छलती
ऊंचे स्तम्भों पर बलभी-युत बने रम्य प्रासाद वहाँ
धूप-धूम सुरभित गृह जिनमें थी आलोक शिखा जलती
स्वर्णकलश शोभित भवनों से लगे हुए उद्यान बने
ऋतु प्रशस्त पथ बीच-बीच में कहीं लता के कुञ्ज घने
जिसमें दम्पति समुद विहरते प्यार भरे दे गलबाहीं
गूँज रहे थे मधुप रसीले, मदिरा मोद पराग सने
देवदारु के वे प्रलम्ब भुज जिनमें उलझी वायु तरंग
मुखरित आभूषण से कलरव करते सुन्दर बाल विहंग
आश्रय देता वेणु-वनों से निकली स्वर लहरी ध्वनि को
नागकेसरों की क्यारी में अन्य सुमन हैं ये बहुरंग
नव मंडप में सिंहासन सम्मुख कितने ही मंच वहाँ

एक ओर रक्खे हैं सुन्दर मढ़े चर्म से सुखद वहाँ
आती है शैलेय अगरु की धूम गंध आमोद भरी
(स्वप्न)

सौन्दर्य और सुचित्रण की इतनी कलापूर्ण एवं ऐश्वर्यमयी झाँकी दूसरे स्थान पर मिलना असम्भव है। मिलेगी तो प्रसाद की ही 'स्वर्ग के खण्डहर में' जैसी कुछ कहानियों में। स्पष्ट है कि भाषा, भाव, शैली की प्रौढ़ता और पुष्ट दार्शनिक संदेश की दृष्टि से आधुनिक ग्रन्थों में 'कामायनी' बेजोड़ है। तुलसी के मानस (१५७५ ई०) के बाद जीवन की विशद व्याख्या और नवीन जीवन के संदेश को सामने रखने वाला ग्रन्थ अब तक नहीं आया। तुलसी ने मध्ययुग के धार्मिकता-प्रधान लोकजीवन को मर्यादा-मार्ग का संदेश दिया। रामभक्ति-मय, मर्यादा-प्रधान, लोक-जीवन के प्रति उत्तरदायी, वर्णाश्रम संस्थानुकूल स्वस्थ जीवन तुलसी ने अपने समय की जनता के सामने रखा। यह जीवनादर्श मध्ययुग की हिन्दू जनता के लिए चाहे कितना महत्वपूर्ण हो अब जीवन को नए सिरे से देखने और नये आदर्श गढ़ने की आवश्यकता है। हमारे समय में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, गांधी, जवाहरलाल, डा० इक़बाल और प्रसाद ने इस ओर प्रयत्न किया है। लोक-जीवन को नया मार्ग दिखलाने का श्रेय वांछनीय ही नहीं, स्तुत्य है। इस स्थान पर इन सब मनीषियों की जीवन-चिंता पर विचार करना सरल नहीं, परन्तु यह मानना उचित नहीं कि प्रसाद ने जीवन को अपने ढंग के देखा है और उसे एक महान् चिद्शक्ति के आनन्द-नृत्य के रूप में समझा है। प्रत्येक मनुष्य इस चिद्शक्ति का अंश है और उसमें विराट के स्फुलिंग विद्यमान हैं। इन्हीं को जगा कर विश्वात्मा के महासंगीत में योग देना ही मनुष्य जीवन की पूर्णता है। परन्तु यह कैसे हो—प्रसाद कहते हैं—देवताओं का जीवन-लक्ष्य उच्छृंखलता-विलासजन्य आनन्द था, इसी से देवता नाश को प्राप्त हुए। मनु (मनुष्य-मन) ने अपने लिए बड़ी असफलताओं के बाद

एक जीवन-लक्ष्य खोज निकाला है—वह है श्रद्धाबुद्धि (भाव-ज्ञान) —समन्वित कर्म द्वारा आनन्द की साधना। भाव-ज्ञान-कर्म जहाँ एक बिन्दु पर आ जाते हैं, वहीं आनन्द की गत स्वतः बजने लगती है। आधुनिक मानव के लिए यह प्रसाद का सार्वभौम सन्देश है। इस सन्देश की उपयोगिता यही है कि वह वर्ग-जाति-राष्ट्र विशेष के लिए न होकर मनुष्यमात्र के लिए है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर औपनैषदिक सरल जीवन और अन्तर्राष्ट्रीयता के पक्षपाती हैं, गांधीजी सर्वोदय चाहते हैं; जवाहरलाल विज्ञानमय समाजवाद और राष्ट्रीयता पर आश्रित अन्तर्राष्ट्रीयता की आवाज़ उठाते हैं। इक़बाल ने मनुष्य की मौलिक स्वतन्त्रता और विज्ञान की सामाजिकता को अपना सन्देश बनाया है। प्रसाद भी इसी श्रेणी के चिन्तक हैं। उनका दृष्टिकोण इक़बाल और नेहरू के दृष्टिकोणों से भिन्न है। वह गांधीजी के नज़दीक पड़ती है। वे विज्ञानमयी बुद्धि-प्रधान सभ्यता को वर्ग-मानवता की ओर इंगित करते हैं।

(७)

'कामायनी' का सारा ढाँचा महाकाव्य का है। वह एक उदात्त नायक की कथा है। प्रेम और उपेक्षा से भरी एक कहानी है। परन्तु कथा-सूत्रों का विकास नहीं हो पाया है। इसका कारण है कि प्रसाद ने कथा को मनोवैज्ञानिक रूपक बना दिया है। इससे कथा-प्रवाह में बाधा पड़ती है और जीवन पूरी तरह नहीं उतरता। महाकाव्य के आधार पर कथा को सर्गों में विभाजित किया गया है और प्रत्येक सर्ग में एक ही निश्चित छंद का प्रयोग है। प्रकृति के नग्न तीव्र चित्र भी हैं। जल-प्रलय, वसन्त, शिशिर, शरद, नगर, युद्ध आदि अनेक महाकाव्य के उपकरण मिलेंगे। परन्तु फिर भी 'कामायनी' महाकाव्य न होकर एक उत्कृष्ट स्वच्छन्द कथा (रोमांस) मात्र रह जाती है। 'छायावाद-काव्य' मूलतः मुक्तक रूप में है। कथा बाँध कर काव्य का

निर्माण Classical Poetry (मर्यादामय काव्य) का ढंग है। 'छायावाद' की स्वच्छन्दतावाद धारा गीतों से भरी है और 'कामायनी' की आत्मा भी गीतिप्रधान (Lyrical) है। उसका सन्देश कितना ही महान् हो, अपनी विशिष्ट शैली के कारण यह महाकाव्य न होकर विशाल गीति-कथाकाव्य (Lyrical narrative) मात्र रह जाता है।

फिर कथा में कल्पना-चित्रों का इतना बाहुल्य है कि वह शुद्ध कथा-काव्यरस की प्राप्ति में व्याघात उपस्थित करता है। छायावाद-काव्य कल्पना-प्रधान है, अतः कल्पना-चित्रों का अत्यंत प्राचुर्य है। इसके अतिरिक्त कवि बीच-बीच में मानसिक प्रवृत्तियों के उद्घाटन (चिन्ता, काम, वासना, लज्जा) में लग जाता है और कथा बाट जोहती हुई ठहरी रहती है। रोमांस-काव्यों में कथा के बीच में अनेक अंनर्गल बात जुड़ी रहती है—यही प्रवृत्ति 'कामायनी' में भी दिखलाई पड़ती है।

यह सब त्रुटियाँ होने पर भी 'कामायनी' का आधुनिक काव्य में अत्यन्त उत्कृष्ट स्थान रहेगा। १९१३—३६ के काव्य की जो-जो विशेषताएँ हैं, वह इस एक में गुम्फित मिलेंगी। छायावाद-काव्य की शक्ति और दुर्बलता का एक साथ प्रदर्शन यहाँ हुआ है। कल्पना-चित्रों की नवीनता, और उत्कृष्टता, सहज सहानुभूति, विराट मानवीयता, रूप-चित्रण, प्रकृति-प्रेम, और व्यंजना-प्रधान शैली यह सब विशेषताएँ 'छायावाद' से सम्बद्ध हैं। अस्पष्टता, संस्कृत-गर्भता, सूक्ष्म-तत्त्वों की ओर दृष्टि, कल्पनातिरेक ये कुछ त्रुटियाँ भी हैं। परन्तु प्रत्येक युग के काव्य की अपनी सीमाएँ होती हैं। प्रसाद की 'कामायनी' का महत्त्व यह है कि वह एक युग के काव्य (छायावाद) का प्रतिनिधित्व करती है, उसी प्रकार जिस प्रकार मानस और सूरसागर मध्ययुग की रामभक्ति और कृष्णभक्ति धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं या बिहारी रीतिकाल की प्रेम-विलासमयी चुहलों का चित्र उपस्थित करते हैं। आज के बुद्धजीवी, विश्लेषण-प्रधान, सौन्दर्यप्रिय दार्शनिक मन को

'कामायनी' सन्तुष्ट कर सकेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। आज जब काव्य का रूप बदल रहा है और जीवन के प्रति हम नए प्रकार से जागरूक हो उठे हैं, तो पिछली पीढ़ी की काव्य-सम्पदा के यथार्थ मूल्यांकन से ही हम आगे बढ़ सकेंगे।

'कामायनी' की भूमिका [ख]

'कामायनी' : एक परिचय की भूमिका में सुश्री महादेवी वर्मा ने 'कामायनी' का मूल्यांकन इस प्रकार किया है—'कामायनी' तत्त्वतः समझने के लिए यह जान लेना उचित है कि छायावाद युग की सबसे सुन्दर सृष्टि होने पर भी और रहस्य-भावना के वैतालिक की कृति होने पर भी कामायनी का लक्ष्य न अरूप की छाया है, न निराकार का रहस्य। उसमें जो कुछ रहस्य है वह मानव-प्रकृति की ऐसी रहस्यात्मकता है जिससे मनुष्य, मनुष्य के नाते छुटकारा पा ही नहीं सकता। उसके सांकेतिक अर्थ के सम्बन्ध में प्रसादजी स्वयं कहते हैं—'यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का अद्भुत मिश्रण हो गया है, इसलिये मनु-श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ यथार्थता से सर्वथा स्वतंत्र है ऐसा मान लेना बहुत उचित नहीं जान पड़ता। प्राधान्य तो उस व्यक्ति का रहेगा जिसका इतिहास हमारे वेद से लेकर पुराणों तक और भारत से लेकर सुदूर पाश्चात्य देशों तक बिखरा हुआ है। हमारे यहाँ साधारण पाठक और आलोचक या तो इस प्राचीन इतिवृत्त से इतने परिचित नहीं या इतने संशयालु हैं कि इसे एक अधूरे सांकेतिक अर्थ में ग्रहण कर लेना स्वाभाविक हो जाता है। कहना व्यर्थ होगा कि इस प्रवृत्ति ने 'कामायनी' को सम्पूर्ण सजीवता के साथ ग्रहण करने में कोई सहायता न दे कर बाधा ही पहुँचाई, क्योंकि उसकी सांकेतिकता का आधार नष्ट करके उसकी प्रेरणा को मूलतः समझना सहज नहीं रह जा जाता।'

इस व्याख्या में कवियित्री ने 'कामायनी' के अध्ययन की दो अलग-अलग रूपरेखाएँ स्थिर की हैं। मनु ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। कामायनी में हम मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय में तर्क और विश्वास के अंतर्द्वन्द या संघर्ष का चित्रण पाते हैं। मनु आदि पुरुष हैं। कामायनी आदि नारी। पुरुष और आद्या के मनोविकास का चित्रण कामायनी की विशेषता है, अतः इस दृष्टि से वह ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक काव्य है। आदि पुरुष और आदि नारी की कहानी इतनी उलझी नहीं होना चाहिए जितनी बाद के युगों की कहानी। इसी से 'कामायनी' में कथा-विस्तार का आग्रह नहीं है। सारी कथा में मूल रूप से दो ही चरित्र उभर कर आते हैं। मनु और श्रद्धा। मनु के उद्दाम अन्तर्द्वन्द और श्रद्धा के शांत आत्मविश्वास के घात-प्रतिघात को प्रसाद ने महाकाव्य का रूप दे दिया है। विचाराक्लांत मनु शान्तिमूर्ति श्रद्धा की ओर आकर्षित होते हैं, परन्तु श्रद्धा के आत्मसमर्पण के बाद उनके हृयय में कर्म की भयंकर वात्या बहने लगती है और इस आँधी में वह उड़ जाते हैं। श्रद्धा के प्रशान्त आत्म-विश्वास से उन्हें धक्का लगता है और वह उसके स्नेह-बंधन को तोड़ डालते हैं। परन्तु अंत में इड़ा के चक्र में पड़ने पर उन्हें कर्म की आँधी की असारता का पता चलता है और श्रद्धा ही उनकी मार्ग-प्रदर्शिनी बनती है। वह मानव की जाया है।

'कामायनी' की विशेषता यही है कि वह नए युग की सारी प्रवृत्तियों को आत्मसात किये है। मध्ययुग के देव-चरित्रों में हमें श्रद्धा नहीं है; लौकिक दिव्य कथाएँ हमारे लिए अगम्य हैं। उपन्यास-कहानी में हम प्रतिदिन के व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं। इसीलिये प्रसाद ने 'कामायनी' में नया पथ पकड़ा है। उन्होंने 'कामायनी' में स्वयं मनुष्य की प्रकृति का विवेचन किया है, आदिम काल से मनुष्य की प्रकृति का एक ही प्रकार से विकास होता गया है। इसी विकास की रूपरेखाएँ प्रसाद के काव्य का प्राण हैं। महादेवी के शब्दों में

"हमारे सामने जो क्षितिज है, वह किसी लोक-विश्रुत या अलौकिक चरित्र की दिग्विजय यात्रा नहीं चित्रित करता, प्रत्युत उसके सब हलके गहरे रंग, सारी लघु-दीर्घ रेखाएँ दो व्यक्तियों को स्पष्ट करती रहती हैं और ये दो व्यक्तित्व हैं—आदिम पुरुष और आदि नारी। अतः उनमें अलौकिकता से अधिक उन प्रवृत्तियों का महत्व है जिनसे लोक का निर्माण सम्भव हो सका। इस दृष्टि से उनकी यह चारित्रिक विशेषताएँ आज भी हमारी हैं।' अतः कामायनी का दूसरा तथ्य—मनोवैज्ञानिक तथ्य—ऐतिहासिक तथ्य से अधिक सजीव एवं अधिक महत्वपूर्ण है। 'कामायनी' का नायक मनु पूर्णरूप से व्यक्तिवादी है। वह अकेला है। कहता है—

शैल निर्झर न बना हत भाग्य
　　गल सका नहीं जो कि हिम खंड
दौड़ कर मिला न जलनिधि अंक
　　आह वैसा ही हूँ पाखंड

आज-कल के अहंवादी मानव की तरह वह कहता है—

विश्व में जो सरल सुन्दर हो विभूति महान
सभी मेरी हैं सभी करती रहें प्रतिदान
यही तो हैं ज्वलित तांडव-वह्नि नित्य अशांत
सिंधु-लहरों सा करें शीतल मुझे सब शांत

वही मनु 'विश्ववादी' बन कर कथा समाप्त करते हैं—

सब की सेवा न पराई
　　वह अपनी सुख-संसृति है
अपना ही अणु-अणु कण-कण
　　द्वयता ही तो विस्मृति है,
सब भेद-भाव भुलवा कर

सुख-दुःख को दृश्य बनाता
मानव कह रे "यह मैं हूँ"

कथा के अंत में हम प्रसाद को बुद्धिवाद के अटल विरोधी के रूप में देखते हैं। आधुनिक युग बुद्धिवाद का युग है। इसके विपरीत प्रसाद मनु (मानव) को इड़ा (बुद्धि) के प्रति जुगुप्सा से भर देते हैं। सरस्वती तट पर जब एक गुफा में मनु दूसरी बार मिलता है, तो श्रद्धा से यही कहता है—

यह क्या श्रद्धे! बस तू ले चल
उन चरणों तक दे निज सम्बल
सब पाप-पुण्य जिसमें जल-जल
पावन बन जाते हैं निर्मल
मिटते असत्य से ज्ञान लेश
समरस अखंड आनन्द वेश

अंत में जब श्रद्धा के संकेत से ज्ञान, कर्म और भाव की तीन विभिन्न मूर्तियाँ एकाकार हो जाती हैं—

वे सम्बद्ध हुए फिर सहसा
जाग उठी थी ज्वाला जिनमें

तब एक अभिनव सृष्टि का जन्म होता है। त्रिपुरदाह का यही आधुनिक अर्थ है। 'कामायनी' की मूर्त भाषा में ज्ञान, भाव और कर्म के त्रैत का त्रिपुर दाह इस प्रकार है—

स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे

परन्तु समाप्ति यहीं नहीं होती। ज्ञान, भाव, कर्म के मिलन से दिव्य

आनन्द-लहरी बहने लगती है। तन्त्रों में श्रद्धा-द्वारा त्रिपुरों के मिलने का वर्णन है, यथा

त्रिपुरानन्तशक्त्यैक्यरूपिणी सर्वसाक्षिणि।

इसी अनन्त-शक्तिणी श्रद्धा की स्मिति द्वारा प्रसाद ने ज्ञान, कर्म और भाव में समरसता उत्पन्न करने का संदेश दिया है। परन्तु यह समरसता स्वयं साध्य नहीं है। यह तो आनन्द की जाया है इसीलिए कहा गया है—

जाते समरसानन्दे द्वैत मप्यमृतोपमम्
मित्रयोरिव दाम्पत्योर्जीवात्म परमात्मयोः।

इसी अद्वैतानन्द—चिदानन्द—को प्रसाद ने 'तन्मय' शब्द में अभिव्यक्त किया है। स्वयं विराट् चिद् सत्ता का भी एक चित्र 'कामायनी' में है। 'इड़ा' जब कुमार को लेकर श्रद्धा और मनु की तपभूमि (अब आनन्द-भूमि) में पहुँचती है, तो वह देखती है सनातन पुरुष और आदि शक्ति प्रकृति का महाविलास :

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन
निज शक्ति तरंगायित था
आनन्द-अम्बु-निधि शोभन !

इस प्रकार कामायनी की कथा महासमाधि के चिदानन्द में विराम पाती है। प्रसाद ने जीवन का एक अत्यन्त संतुलित चित्र उपस्थित करते हुए ज्ञान, कर्म, भाव की समन्वयात्मक साधना द्वारा प्राप्त महानन्द की ओर इंगित किया है। हृदय और बुद्धि का परिहार आनन्द की अनुभूति में ही सम्भव है।

'कामायनी' में प्रसाद ने शाश्वत मानवता के विकास का चित्र उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। सार्वभौम कल्याण-भावना से प्रेरित हो वह देश-काल वर्गहारा मानव के लिये एक नई सभ्यता,

नई संस्कृति, नये दर्शन का संकेत करने चले हैं। जीवन का मौलिक अन्वेषण और विश्लेषण कामायनी की सबसे बड़ी देन है। अनेक मानसिक तत्त्वों के सूत्रों को समेट बटोर कर भावी मानव के मङ्गल-सूत्र में गूँथ दिया गया है। चिंता, आशा, ईर्ष्या, क्षमा, जैसे मनोभाव मानस को जिस विकास-पथ पर त्रिकाल तक आगे बढ़ाते रहेंगे, "कामायनी" में उन्हीं की सुन्दरतम व्याख्या है। यह सम्भव नहीं कि "कामायनी' रामचरितमानस की भाँति जन-साधारण की चीज़ हो सके। परन्तु केवल इसी बात से वह छोटी नहीं हो जाती। साहित्य की अनेक अनुभूतिताँ इतनी उदात्त, इतनी सचेष्ट और इतनी रहस्यमय होती है कि साधारण मानव-मन उनमें उलझ जाता है। परन्तु जन-संस्कार भी अभी कहाँ बने हैं! अभी तो हम जनता को जरा भी ऊँचा नहीं उठा सके हैं। जो हो, प्रतीकों को नवीनता और विचारों की गंभीरता के कारण ही कोई काव्य असफल नहीं हो जाता। प्रसाद जनता के कवि थे भी नहीं। वे संस्कृत-हृदय मानव के कवि हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उनके संदेश को सरल भाषा में आधुनिक युग के सामने रखा जाये। यह अनिवार्य भी है। रामचरित-मानस जिस प्रकार एक विशेष युग का है, उसी प्रकार 'कामायनी' एक विशेष युग की वस्तु है। वह आधुनिक युग की सारी चेतना को समेट कर चलती है, परन्तु परोक्ष रूप में नहीं। आधुनिक युग जीवन, समाज और राजनीति के सम्बन्ध में आविष्कारों का युग है। चारों ओर जिज्ञासा का एक भाव व्याप्त हो गया है। 'कामायनी' में इसी जिज्ञासा का समाधान है।

अपने युग के अनुरूप 'कामायनी' एक सुन्दर रचना है। युग की ध्वनि उनके इस काव्य में इस प्रकार नहीं सुनाई पड़ती, जितनी शक्ति से गांधी या समाजवादी काव्य में, परन्तु कामायनी की जिज्ञासा और उसका समाधान युग के आधार को ही लेकर चले हैं। जो लोग प्रसाद की दृढ़ चिंतन-भित्ति से परिचित नहीं हैं वे उनके "आनन्द-

वाद" को गये गुज़रे ज़माने की चीज़ या मध्ययुग की कल्पना-ऐश्वर्य से सजाई मूर्ति मात्र समझ लेंगे। परन्तु प्रसाद का 'आनन्दवाद' इतनी निर्बल नीवों पर नहीं खड़ा है। उसे एक चिंतन-प्रधान कवि दृष्टि का सहारा है। आज के विशृंखल युग ने प्रसाद को उसी तरह जीवन-संदेश देने की प्रेरणा दी जिस तरह मध्ययुग की विलासी जनता और अकर्मण्य समाज ने तुलसी को राम-सीता की आदर्श दाम्पत्य मूर्तियाँ और राम-राज्य के मर्यादापूर्ण समाज की ओर प्रेरित किया था। उन्होंने 'श्रद्धा' के रूप में आजकल की नारी के सामने विज्ञानमयी श्रद्धात्मकता का आदर्श रखा है। जीवन में सुख-शान्ति की बराबर दौड़ लगी है। पुरुष कहता है—

आकर्षण से भरा विश्व यह
केवल योग्य हमारा

तब इस आदर्श नारी और पुरुष का संघर्ष उपस्थित हो जाता है। तब संघर्ष में विजयिनी होती है नारी। श्रद्धा के सम्बन्ध में 'प्रसाद' की ये पंक्तियाँ आधुनिक नारी के लिए चुनौती के समान हैं—

देवों की विजय दानवों की
हारों का होता युद्ध रहा
संघर्ष सदा उर अन्तर में
जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा।
आँसू से भीगे अंचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा
तुमको अपनी स्मित रेखा से
यह संधि का लिखना होगा

जिस तरह मैथिलीशरण गुप्त ने 'यशोधरा' में नारी को पुकार कहा था—

अबला जीवन ! हाय, तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध, और आँखों मे पानी

इसी तरह प्रसाद की भी नारी जीवन की स्वर्गीय पवित्रता को पुरुष के लिए एक महान् प्रसाद के रूप में स्वीकार करते हैं। आजकल के व्यापक संघर्षों के चित्र प्रसाद इड़ा के सारस्वत नगर में उपस्थित करते हैं—

यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि
द्वयता में लगी निरन्तर ही वर्णों की करती रहे वृष्टि
अनजान समस्यायें गढ़ती रचती हो अपनी ही दिष्टि
कोलाहल कलह अनन्त चले, एकांत नष्ट हो, बढ़े भेद
अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दुखद खेद

× × ×

पहचान सकेंगे नहीं परस्पर चले विश्व गिरता पड़ता
तब कुछ भी हो यदि पास भरा पर दूर रहेगो सदा तुष्टि
दुख देगी यह संकुचित दृष्टि

निरन्तर वर्णों की सृष्टि से समाज-संघटन से अधिक विघटन की ओर ही बढ़ा है। अभिलषित वस्तु (एकता, सुख) का मिलना तो इस द्वैत-सृष्टि ने अनेक प्रकार के दुःख-पूर्ण भेद-प्रभेद उपस्थित कर दिये। इसका फल यह हुआ कि मनुष्य की व्यापक दृष्टि संकुचित हो गई और देश-काल-वर्गहीन मूल मानव देश-काल-वर्ग के बन्धनों में इतना जकड़ गया कि उसने जातीय और राष्ट्रीय संघर्षों का सूत्रपात कर दिया। जीवन का अर्थ है परिवर्तन। परन्तु हम रूढ़ि-परम्पराओं, में ऐसे जकड़ गये कि इन बन्धनों से ही हमें मोह होने लगा। प्रसाद इस परम्परा, रूढ़ि और सनातन के प्रति अपनी विरोध की स्वस्थ वाणी उठाते हैं। वे कहते हैं—

पुरातना का यह निर्भीक
सहन करती न प्रकृति पल एक
नित्य नूतनता का आनन्द
किये हैं परिवर्तन में टेक

अन्य स्थानों पर भी प्रसाद ने समाज-गलित मानव के स्थान परमूल मानव की अभ्यर्थना की है। उनका 'आनन्द' दुर्बल मानव का पलायन नहीं है, कल्पना-स्वप्न नहीं है। वह स्वस्थ हृदय की मङ्गला-कांक्षा है। शक्ति के दर्प से ओत-प्रोत है। प्रसाद नए युग को संबोधन करते हैं—

और यह क्या सुनते नहीं
विधाता का मङ्गल वरदान
शक्तिशाली हो विजयी बनो
विश्व में गूँज रहा जयगान

सारस्वत प्रदेश के बुद्धिवादी समाज में हमारे अपने भौतिक युग का चित्र है। इस भौतिक युग की विशेषताएँ हैं—

(१) चिरचंचलता, चिरकर्मठता
देश काल का लाघव करते ये प्राणी चंचल से हैं

(२) ज्ञान-सम्पन्नता
बढ़े ज्ञान व्यवसाय परिश्रम बल की विस्तृत छाया में

(३) असंतोष
प्रजा क्षुब्ध हो शरण माँगती उधर खड़ी है
प्रकृति सतत आतंक-विकंपित घड़ी-घड़ी है

(४) यन्त्रशक्ति और तद्‌जन्य ऐश्वर्य
प्रकृति शक्ति तुमने यन्त्रों से सबकी छीनी
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी

और

स्वर्ण-कलश-शोभित भवनों में लगे हुए उद्यान बने

(५) अनेक प्रकार के समाजगतभेद

वर्णों की खाई बन फैली
कभी नहीं जुड़ने की

(६) मनुष्य की अहंता

मैं शासक, मैं चिरस्वतन्त्र
मैं चिरंघन हीन

(७) अधिकारों की लड़ाई

अधिकारों की सृष्टि और
उनकी वह मोहमयी माया

(८) हिंसावाद

आज शक्ति को खेल खेलने को नर आतुर
सामूहिक बलि का था निकला पंथ निराला
रूधिर भरी वेदियाँ भयकारी उनमें ज्वाला.

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद ने अपने काव्य में युग की चेतना ही ग्रहण की है। हमारा समाज भौतिकता और विलास के रोगों से बुरी तरह ग्रसित है। स्वस्थ जीवन के सारे मार्ग अवरुद्ध हो गए हैं। मनु को भौतिक ऐश्वर्य के शिखर पर पहुँच कर अधिकार माँगती हुई प्रजा का प्रताड़न करना पड़ा था। आज तो प्रत्येक देश में वर्गहीन प्रजा और समृद्ध शासक वर्ग में युद्ध होता दिखलाई पड़ रहा है। मिल-मज़दूरों की हड़तालें और क़िसानों के विद्रोह भौतिक सभ्यता के शाप के प्रतीक हैं। 'एक घूँट' में 'प्रसाद' ने पहले पहल 'लौट चलो नैसर्गिक जीवन की ओर' आवाज़ उठाई थी। 'कामना' (नाटक) में उन्होंने भौतिकवाद के जन्म, विकास एवं ह्रास की कथा कही थी। वहाँ पात्र ही मनोवृत्तियाँ थीं। हम बता चुके हैं कि 'कामना' के सम

के लगभग ही 'प्रसाद' ने 'कामायनी' की रचना शुरू की। अतः जो संदेश 'एक घूँट' और 'कामना' में चलता है, वही अधिक शक्तिशाली ढंग से कामायनी का विषय बना है। 'एक घूँट' में 'प्रसाद' अरुणाचल जैसे तपोवन को ग्राम-जीवन और आधुनिक नगर-जीवन के बीच की चीज़ की तरह लाकर उपस्थित करते हैं। 'कामना' में वह किसी भी समाधान की ओर नहीं बढ़ते। 'कामायनी' में उनका चित्रपट विशाल था। उनकी दृष्टि सारे मानव-समाज पर थी। पूर्व-पच्छिम सबके लिए एक ही संदेश का नियोजन उन्होंने किया। न उन्होंने विज्ञान को अस्वीकार किया, न ज्ञान को। वे एक महान् समन्वयवादी की भाँति परस्पर विरोधी तत्त्वों का समन्वय एवं समाहार करते हुए दिखलाई पड़ते हैं।

गांधीयुग के होते भी 'प्रसाद' गांधीजी से अधिक प्रगतिशील हैं। उन्होंने गांधीजी की भाँति अपने उन्नत जीवन की नीति त्याग पर नहीं रखी है। वे न अतिमोदवादी हैं, न संत। उनका संदेश भी आध्यात्मिक नहीं है। इसीलिए ईश्वर, जीव, ब्रह्म जैसे अध्यात्मवादी शब्दों का 'कामायनी' में नितांत अभाव है। प्रसाद वर्ण-जाति के एकांततः विरोधी हैं। वे तप नहीं, आनन्द, ज्ञान और कर्म ही नहीं ज्ञान, कर्म, भाव तीनों के समाहार की ओर इंगित करते हैं। अवश्य ही गांधीजी की भाँति उन्होंने भौतिकता को मनुष्य की सांस्कृतिक निष्ठा का विरोधी माना हैं, परन्तु यह इस कारण नहीं कि विज्ञानवादी भौतिकता अपने मूल अर्थ में अनिष्टकारी है। प्रसाद का विचार है कि इसका कारण मन, बुद्धि और हृदय का असंतुलन है। वे गांधीजी के रामराज्य के स्वप्नों में और आगे बढ़ कर 'आनन्दलोक' का स्वप्न देखते हैं। यों दोनों प्रेम (काम) और कामायनी (श्रद्धा) को ही मानस तत्त्वों में सर्वश्रेष्ठ और मानवता के लिए कल्याणकारी समझते हैं। प्रेम के निर्माणकारी तत्त्वों का चित्रण प्रसाद ने बड़े उत्साह से किया है—

प्रत्येक नाश विश्लेषण भी
संश्लिष्ठ हुए, बन सृष्टि रही
ऋतुपति के घर कुसुमोत्सव था
मादक मरंद की वृष्टि रही
भुजलता पड़ी सरिताओं की
शैलों के गले सनाथ हुए
जलनिधि का अंचल व्यजन बना
धरणी का दो-दो साथ हुए
कोरक अंकुर सा जन्म रहा
हम दोनों साथी झूल चले
उस नवल सर्ग के कानन में
मृदु मलयानिल से फूल चले

इसी प्रेम के आनन्द में साधक पंच ज्ञानेन्द्रियों के सभी विषयों—रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द—का पान करता है।

पीता हूँ, हाँ मैं पीता हूँ
यह स्पर्श, रूप, रस, गंध भरा
मृदु लहरों के टकराने से
ध्वनि में है क्या गुंजार भरा ?

इस तरह 'प्रसाद' मध्ययुग के भारतीय काव्य-साहित्य की सारी परम्परा से दूर पड़ कर तंत्र-साहित्य और शैवागमों के आधार पर एक नए जीवन-तथ्य को उपस्थित करते हैं। सिद्धों और संतों ने सहज मार्ग का सन्देश दिया था। संत ज्ञानवादी थे। सिद्धों ने उनके पूर्व जो आनन्द की धारा बहाई थी, उसे सन्तों ने तप और संयम के युग-कूलों में बाँध दिया। 'प्रसाद' ने 'रहस्यवाद' निबन्ध में अपना सम्बन्ध सिद्ध-साहित्य से जोड़ा है। ये कहते हैं—'सिद्धों ने आगम के बाद रहस्यवाद की धारा अपनी प्रचलित भाषा में जिसे वे संध्या-भाषा कहते थे, अविच्छिन्न रक्खी और सहज आनन्द के उपासक बने रहे।'—

अनुभव सहज सा मोल रे जोई
चोकोट्टि विभु का जइसो तइसो होई
जइषने आछिले स बइसन अच्छ
सहज पथिक जोई भान्ति माहो बास

(नारोपा)

वे शैवागम की अनुकृति ही नहीं, शिव की योगेश्वर मूर्ति की भावना भी आरोपित करते थे—

नाडि शक्ति हिय धरिय खदे
अनछा डमरू बाजए बीर नादे
कन्ह कपाली योगि पइठ अचारे
देहन अरी विछाए एकारें

(कण्हपा)

इन आगमानुयायी सिद्धों में आत्म-अनुभूति सापेक्ष थी। परोक्ष विरह उनके समीप न था। वह प्रेम-कथा स्वपर्यवसित थी। "सिद्धों ने आनन्द के लिए सङ्गीत को भी अपनी उपासना में मिला लिया था। परन्तु 'प्रसाद' सिद्धकाव्य और सिद्धसाधना के विकृत रूप से भी परिचित हैं। वह जानते हैं कि सिद्धों के सहजानन्द के पीछे बौद्धिक गुप्त कर्मकांड की व्यवस्था भयानक हो चली थी। 'प्रसाद' के अनुसार उनके आनन्दवाद का पहला उद्वेग ऋग्वेद में मिलता है। इन्द्र इस आनन्दवादी साधना के आदि प्रवर्तक हैं। अद्वैतभक्ति के रूप में शैवों ने इसी आनन्दवाद को स्वीकार किया। तन्त्र-साहित्य, शक्ति-साहित्य, आगम-साहित्य औरकालिदास-प्रभृति कवियों में इस आनंदवाद के मुख्य स्रोत मिलेंगे। स्वयं भागवत और वैष्णव साहित्य ने अद्वैत-भक्ति के रूप में इस आनन्दवाद को स्वीकार किया, परन्तु बाद को विरह और द्वैत भावना के सुर इसमें मिल गये। कवि राधाकृष्ण के विरह का रूपक रचने लगे और सन्त 'राम की बहुरिया' से 'सुन्न

महल' में मिलने की आकुल प्रतीक्षा करने लगे। इस प्रकार एक ओर कृष्ण-कवियों की विरह-भावना, तुलसी के मर्यादा भाव एवम् ज्ञानमण्डता ने आनन्दवाद की धारा-प्रवाह में बाधा डाली, तो दूसरी ओर मिथ्या रहस्यवादी और मिथ्या आनन्दवादी इसे कुत्सित अनाचार बताने लगे। सूफ़ी, सन्त और कृष्ण-कवियों का प्रेम, मिलन की प्रतीक्षा में, सदैव विरहोन्मुख रहा। कवि 'वृन्दावन' ही बन सके, श्याम नहीं। यह प्रेम का रहस्यवाद विरह-दुःख से अधिक अभिभूत रहा। यद्यपि कुछ लोगों ने सहज आनन्द की योजना भी की थी। और उसमें माधुर्य महाभाव के उज्ज्वल नीलमणि को परकीय प्रेम के कारण गोप्य और रहस्यमूलक बनाने का प्रयत्न भी किया था, परन्तु द्वैतमूलक होने के कारण तथा वाह्य आवरण में बुद्धिवादी होने से सन्तों में यह विषय साहित्यिक ही अधिक रहा। निर्गुण-सम्प्रदाय वाले सन्तों ने भी राम की बहुरिया बन कर प्रेम और विरह की कल्पना कर ली थी, किन्तु सिद्धों की रहस्य-सम्प्रदाय की परम्परा तुकनगिरि और रसालगिरि आदि ही शुद्ध रहस्यवादी कवि लावनी में आनन्द और अद्वैयता की धारा बहाते रहे। वह वर्तमान हिन्दी काव्य की रहस्यवादी धारा का संबन्ध इसी आनंदवादी धारा से जोड़ते हैं। "वर्तमान हिंदी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है; वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है।"

प्रसाद के इस वक्तव्य से हमें उनके काव्य के संबन्ध में एक नई दिशा का पता चलता है। अतः उनके सारे काव्य को इस नई वीथिका में रख कर देखना पड़ता है। वह विथिका है आनन्दवाद की व्याख्या, उसकी साधना और साहित्य की परम्परा। सिद्धों के समय से आनन्दवाद के काव्य की एक धारा हिन्दी में चली आ रही है। इस धारा के कवियों और साधकों ने अनेक छन्दों और अनेक रूपों में अपने काव्य को व्यक्त किया है और सन्त और भक्त-साहित्य इससे बराबर प्रभावित होते रहे हैं। धीरे-धीरे इस आनंदवादी

धारा का साहित्यिक महत्त्व नष्ट हो गया और तुकनगिरि और रसालगिरि जैसे अज्ञात कवि असाहित्यिक लोक-छंदों (लावनी, ग़ज़ल, क़व्वाली आदि) में इससे थोड़ा बहुत योग देते रहे। प्रसाद का अपना काव्य इसी आनंदवादी धारा का वर्तमान संस्करण है। इसमें 'कामायनी' सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है।

तब 'कामायनी' की मूल प्रेरणा के लिए हमें बहुत पीछे आगमों, तंत्रों और आनंदवादी गीतों-प्रगीतों तक जाना पड़ेगा। तभी हम प्रसाद की इस कृति का महत्त्व समझ सकेंगे। हमारे साहित्य और हमारी साधना के एक लुप्तप्राय अंग को भावुक प्रसाद ने सारी सच्चाई के साथ उभार कर हमारे सामने रखा है। इसमें कितना अंश उनका है, कितना प्राचीन आगमकारों और आनन्दवादियों का, यह कहना कठिन है, परंतु प्रसाद की 'कामायनी' हमारी साधना को एक नया मार्ग बताती है और एक नये जीवन-सन्देश से हमें स्पन्दित करती है।

३

'कामायनी' का साहित्यिक अध्ययन

(१) भूमिका

हम ऊपर बता चुके हैं कि छायावाद-काव्य की मूल प्रेरणा साहित्यिक है। साहित्य के भीतर से ही देश को एक नई विचारधारा, एक नये जीवन-दर्शन, एक नई मुक्त भावना देने का प्रयत्न १९०९ से लेकर १९३६ तक के हिन्दी काव्य में हुआ है। 'कामायनी' इस साहित्यिक आन्दोलन में शीर्ष-स्थान प्राप्त करती है। छायावाद की सारी प्रवृत्तियाँ अपने सबसे सुन्दर, अपने सबसे निम्न रूप में यहीं मिल जाती हैं। अतः शुद्ध साहित्य के रूप में इस महाकाव्य का अध्ययन करना और भी उपादेय हो जाता है। जान पड़ता है 'आँसू' (१९२५) और 'कामना' (१९२७) के बाद ही प्रसाद ने इस नये काव्य का प्रणयन आरंभ किया। १९२७-२८ की 'त्यागभूमि' में 'लज्जा और नारी' शीर्षक जो लम्बी कविता प्रकाशित हुई है, वह 'कामायनी' का 'लज्जा' प्रकरण है। 'आँसू' के दूसरे संस्करण (१९३३) की अनेक पंक्तियाँ कामायनी की पंक्तियों से मिल जाती हैं। इसका कारण यह है कि जब प्रसाद 'आँसू' में परिवर्तन-परिवर्द्धन कर रहे थे तो वह 'कामायनी' की रचना भी कर रहे थे। इससे स्पष्ट है कि 'कामायनी' कवि के दस वर्षों की अनवरत काव्य-साधना का फल है। इस सारे काल को हम 'कामायनी-काल' (१९२६-३६) भी कह सकते हैं। इस सारे काल में प्रसादजी ने निम्नलिखित रचनाएँ उपस्थित कीं : १९२६ (जनमेजय का नागयज्ञ, प्रतिध्वनि), १९२७ (कामना), १९२८ (स्कंदगुप्त विक्रमादित्य), १९२९ (एक घूँट, आकाशदीप,

कंकाल) १९३१ (चन्द्रगुप्त मौर्य परिवर्द्धित, आँधी), १९३४ (ध्रुवस्वामिनी, तितली), १९३५, (लहर), १९३६ (कामायनी, इंद्रजाल)। इसके बाद उन्होंने 'इरावती' (उपन्यास) को हाथ में लिया, परन्तु वे उसे अपूर्ण ही छोड़कर चल दिये। 'इन्द्र' नाम से केवल नाटक भी वे लिखना चाहते थे और उसकी पृष्ठभूमि को वे एक सुन्दर निबन्ध के रूप में द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित भी करा चुके थे।

स्पष्ट है कि ये दस वर्ष प्रसाद की साहित्य-साधना के दस अत्यन्त व्यस्त वर्ष हैं। इन दस वर्षों में उन्होंने हिन्दी को ६ नाटक, चार कहानी, तीन उपन्यास और अनेक उत्कृष्ट निबन्ध दिये। कदाचित् हिन्दी के किसी भी साहित्यिक ने दस वर्षों में इतना क्रांतिकारी, इतना उत्कृष्ट, इतना विविध साहित्य नहीं दिया। इस सम्बन्ध में उनकी तुलना केवल प्रेमचन्द से की जा सकती है, परन्तु प्रेमचंद के क्षेत्र केवल कहानी और उपन्यास थे। वह इतने बड़े कलाकार भी नहीं थे जितने प्रसाद। शुद्ध कला—'कला कला के लिये'—के तो उपासक वे थे ही नहीं। इस वीथिका में प्रसाद की यह अंतिम दस वर्षों की साहित्य-साधना और भी चमक उठती है। प्रसाद का यह सारा साहित्य अत्यन्त उत्कृष्ट है। नाटक, कहानी, उपन्यास और निबन्ध लिखते हुए वे बराबर इस काव्य पर कलम चलाते रहे। जब उन्होंने 'कामायनी' लिख ली तो वे बहुधा कहा करते—"मैंने अपने जीवन का एक बहुत बड़ा काम समाप्त कर लिया है।" जान पड़ता कि इन दस वर्षों में उनके भीतर बराबर यथार्थवाद और आदर्शवाद का युद्ध होता रहा। जहाँ एक ओर 'कंकाल' यथार्थवाद का सबसे पहला उपान्यास है वहाँ 'कामायनी' और नाटक हैं जिनमें कवि आदर्श की बहुत ऊँची मनोभूमि पर विचरण करता है। इस द्वैत ने प्रसाद की रचनाओं को विचित्रता दे दी है कि उनका साहित्य किसी एक वर्ग की सीमित रेखाओं में बँध कर नहीं रह जाता।

प्रसाद मूलतः कवि हैं। थोड़ा-बहुत भी जिसने प्रसाद को पढ़ा है, वह यही कहेगा। और कुछ कहना उसके लिए असंभव है। नाटकों, उपान्यासों और कहानियों में अनेक पंक्तियाँ, अनेक भाव, अनेक वाद-विवाद न जाने कहाँ से ऊपर उठकर कवि के भावनात्मक व्यक्तित्व को उभार देते हैं। कविता के स्वर सबसे ऊपर बजने लगते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि इस सारे समय प्रसाद एक अत्यन्त ऊँचे काव्य-वातारण में घूम रहे थे। 'कामायनी' का वातावरण उनके साथ लगा हुआ है। इस बात को न जानकर इन रचनाओं के काव्यत्व से असंतोष प्रगट करना प्रसाद के व्यक्तित्व और उनकी साहित्य-साधना से अज्ञ बनना है।

जो हो, इसमें संदेह नहीं कि 'कामायनी' प्रसाद के जीवन, उनके व्यक्तित्व, उनकी कला और काव्य की साधना का एक बहुत बड़ा अंग है। और इसमें भी संदेह नहीं कि आधुनिक हिंदी साहित्य में नये युग के प्रवर्त्तक के रूप में वे सबसे अग्रगण्य हैं। उनका व्यक्तित्व उनकी कला, उनका साहित्य, उनकी विचारधारा छायावाद-काव्य और तत्कालीन कहानी, नाटक और उपन्यास के क्षेत्रों में बराबर योग देते रहे हैं। इस दृष्टि से भी 'कामायनी' का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है।

(२) कथावस्तु

कामायनी की कथावस्तु बड़ी नहीं है। एक छोटी-सी कथा को लेकर प्रसाद ने उसपर कला और दर्शन का विशाल रंगमहल खड़ा किया है। प्रसाद की प्रतिभा प्रबंधकाव्य की ओर नहीं थी, अन्य छायावादी कवियों की भाँति वे भी मुक्तक रचना में विशेष वैदग्ध्य प्राप्त कर चुके थे। जीवन की भावनात्मक परिस्थितियों को पकड़ कर उनमें प्राणों का 'उन्मन गुंजन' और संगीत की मधुरिमा ढाल देना नई कला थी, परन्तु प्रसाद इस कला में पारंगत थे। इसी से

कामायनी में भावना का प्रकाश तो बहुत मिलता है, परन्तु प्रबन्ध-पटुता नहीं मिलती। यदि प्रसाद प्रबन्ध की ओर ध्यान देते तो और भी कितनी कथायें उन्हें मिल जातीं। परन्तु इस महत्वपूर्ण रचना में उनका मुख न कथा की ओर था, न संगीत की, न काव्यकला की। वह आपाद-मस्तक दर्शनचिंतन में डूबे हैं। जो कथा उन्होंने चुनी है, वह थोड़ी है, रूपक-मात्र है, उसके पीछे जो चिंतन की विशाल भूमि है, वही उसका बल है। केवल कथा-रस के लिए जो कामायनी को पढ़ेंगे उन्हें बहुत नहीं मिलेगा, परन्तु गंभीर पाठक के लिए कथा से बाहर बहुत कुछ है। कदाचित् बाहर ही अधिक है।

'आमुख' में प्रसाद ने स्वयं इस कथा पर प्रकाश डाला है। इस व्याख्या से हमें कथा-सम्बन्धी अनेक बातें ज्ञात होती हैं :

१—'मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्त्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की अनुश्रुति में दृढ़ता से मानी गई है। इसलिए वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष ही मानना उचित है।'

२—पिछले काल में इस कथा को रूपक मानने की चाल पड़ी।

३—यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बड़ा ही भावमय और श्लाघ्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनाने में समर्थ हो सकता है।

४—जलप्लावन भारतीय इतिहास की एक प्राचीन घटना है जिसने मनु को देवों से विलक्षण, मानवों की एक भिन्न संस्कृत प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया। × × × देवगण के उच्छृङ्खल स्वाभाव, निर्बाध आत्मतुष्टि में अंतिम अध्याय लगा और मानवीय भाव अर्थात् श्रद्धा और मनन का समन्वय होकर प्राणी को एक नये युग की सूचना मिली। इस मन्वन्तर के प्रवर्त्तक मनु हुए।

५—मनु, श्रद्धा और इड़ा के नामों के भी ऐतिहासिक व्याख्या प्रसाद ने कर दी है। शतपथ ब्राह्मण (का० १, पृ० १) और भागवत (६-१-११) में मनु को श्रद्धादेव कहा गया है। प्रसाद ने इस कथा

की रूपरेखा के लिए शतपथ ब्राह्मण का ही अधिक सहारा लिया है। शतपथ ब्राह्मण में श्रद्धा को कामगोत्रजा कहा गया है। इसीलिए वह 'कामायनी' है। कथा इस प्रकार है—एक भयंकर जलप्लावन से देवसृष्टि नष्ट हो जाती है। केवल नौकारूढ़ मनु बच जाते हैं। मनु की नाव उत्तरगिरि हिमवान पहुँचती है। वहाँ मनु जिस स्थान पर उतरे उसे मनोरवसर्पण कहा गया है। इसी निर्जन प्रदेश में श्रद्धा के साथ मनु का मिलन होता है और मनु पर्णकुटी बनाकर रहने लगते हैं। असुर पुरोहित किलात-आकुली के मिल जाने से मनु पशु-बलि करते हैं, परंतु यहाँ के बाद मनु में देव प्रवृत्ति (उच्छृङ्खलता आनन्दवाद) फिर जाग उठती है।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार इड़ा मनु के यहाँ से उत्पन्न होने के कारण उनकी दुहिता (पुत्री) कही गई है (शतपथ, ६ प्र० ३ ब्रा०)। इस इड़ा के लिए मनु को अत्यधिक आकर्षण हुआ और श्रद्धा से वे खिंचे। ऋग्वेद में इड़ा को बुद्धि और वाणी का पर्यायवाची माना है और उसे मनुष्यों की शासनकर्त्री कहा है। इड़ा के प्रभाव में आकर ही मनु ने राजस्थापना इत्यादि कर्म किये। इड़ा (बुद्धि) की छाँह में ही उन्होंने अपने लिए कर्मलोक बनाना चाहा। परन्तु वे इतना बढ़कर ही नहीं रह गये। उन्होंने इड़ा को भी अपने अधिकार में करना चाहा, फलतः वे देवताओं द्वारा दंडित हुए। प्रसाद के अनुसार 'बुद्धिवाद के विकास में, अधिक सुख की खोज में, दुःख मिलना स्वाभाविक है।'

६—प्रसाद कहते हैं कि यदि मनु, श्रद्धा और इड़ा सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति भी करें तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं। उनके अनुसार मन (मनु) के दो पक्ष हैं—श्रद्धा (जिसका सम्बन्ध हृदय से है) और इड़ा (जिसका संबन्ध मस्तिष्क से है।) मन के इन दोनों पक्षों का समतुलन मानवजीवन को सुखी बनाता है, इन दोनों का विरोध उसे

तोड़ देता है। इसी मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व को नए प्रकार से कथावस्तु में गूँथ कर प्रसाद ने कामायनी की रचना की है।

इस थोड़ी सी अति-प्राचीन कथावस्तु को लेकर प्रसाद ने मौलिक प्रयोगों के आधार पर उसे विशद भूमि दी है। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ में आचार्य श्री रामचन्द्र शुक्ल ने प्रसाद की इस मौलिक कथा की संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार दी है—"जलप्रलय के बाद मनु की नाव हिमवान् की चोटी पर लगती है और मनु वहाँ चिंताग्रस्त बैठे हैं। मनु पिछली सृष्टि की बातें और आगे की दशा सोचते-सोचते शिथिल और निराश हो जाते हैं। यह चिंता 'बुद्धि', 'मति' या 'मनीषा' का ही एक रूप कही गई है जिससे आरंभ में ही 'बुद्धिवाद' के विरोध का किंचित आभास मिल जाता है। धीरे-धीरे आशा का रमणीय उदय होता है और श्रद्धा से मनु की भेंट होती है। श्रद्धा के साथ मनु शांति-सुखपूर्वक कुछ दिन रहते हैं। पर पूर्व-संस्कार-वश कर्म की ओर फिर मनु की प्रवृत्ति होती है। आसुरी प्रेरणा से वे पशु-हिंसापूर्ण काम्य यज्ञ करने लगते हैं जिससे श्रद्धा को विरक्ति होती है। वह यह देखकर दुखी होती है कि मनु अपने ही सुख की भावना में मग्न हो जा रहे हैं, उनके हृदय में सब प्राणियों में सुख के प्रसार का लक्ष्य नहीं जम रहा है जिससे मानवता का नूतन विकास होता! मनु चाहते हैं कि श्रद्धा का सारा सद्भाव, सारा प्रेम, एकमात्र उन्हीं पर स्थिर रहे, तनिक भी इधर-उधर बँटने न पाए। इससे जब वे देखते हैं कि श्रद्धा पशुओं के बच्चों को प्रेम से पुचकारती है और अपनी गर्भस्थ सन्तति की सुखक्रीड़ा का आयोजन करती है तब उनके मन में ईर्ष्या होती है और उसे हिमालय की उसी गुफा में छोड़कर वे अपनी सुख-वासना लिए हुए चल देते हैं।

मनु उजड़े हुए सारस्वत प्रदेश में उतरते हैं जहाँ कभी श्रद्धा से हीन होकर सुर और असुर लड़े थे, इन्द्र की विजय हुई थी। वे खिन्न होकर सोचते हैं कि क्या मैं भी उन्हीं के समान श्रद्धाहीन हो रहा हूँ। इसी

बीच में अंतरिक्ष से 'काम' की अभिशाप-भरी वाणी सुनाई पड़ती है कि—

मनु ! तुम श्रद्धा को गये भूल ।
उस पूर्ण आत्मविश्वासमयी को उड़ा दिया था समझ तूल ॥
तुम भूल गये पुरुषत्व-मोह में कुछ सत्ता है नारी की ।
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की ॥

+ + +

यह अभिनव मानव प्रजासृष्टि
द्वयता में लगी निरंतर ही वर्णों की करती रहे वृष्टि
अनजान समस्याएँ गढ़ती, रचती हो अपनी ही विनिष्टि
कोलाहल कलह अनन्त चले, एकता नष्ट हो, बढ़े भेद
अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दुखद खेद

प्रभात होता है । मनु अपने सामने एक सुन्दरी खड़ी पाते हैं—

बिखरी अलकें ज्यों तर्कजाल
वह विश्व मुकुट-सा उज्ज्वलतम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल
गुञ्जरित मधुप-से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान
था एक हाथ में कर्मकलश वसुधा-जीवन-रस-सार लिए
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिए

यह इड़ा (बुद्धि) थी । इसके साथ मनु सारस्वत प्रदेश की राजधानी में रह गये । मनु के मन में अब जगत् और उसके नियामक के सम्बन्ध में जिज्ञासा उठती है और उससे कुछ सहाय पाने का विचार आता है तब इड़ा कहती है—

हाँ ! तुम ही हो अपने सहाय ।
जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर किसको नर शरण जाय ?
यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐश्वर्यभरी शोधक-विहीन
तुम उसका पटल खोलने में परिकर कसकर बन कर्मलीन

सबका नियमन शासन करते बस बढ़ा चलो अपनी क्षमता
तुम जनता को चैतन्य करो, विज्ञान सहज साधन उपाय

मनु वहाँ इड़ा के साथ रहकर प्रजा के शासन की पूरी व्यवस्था करते हैं। नगर की श्री-वृद्धि होती है। प्रकृति बुद्धिबल से वश में की जाती है। खेती धूम-धाम से होने लगती है। अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धे खड़े होते हैं। धातुओं के नए अस्त्र-शस्त्र बनते हैं। मनु अनेक प्रकार के नियम प्रचलित करके, जनता का वर्णों या वर्गों में विभाजन करके, लोक का संचालन करते हैं। 'अहं' का भाव ज़ोर पकड़ता है। वे अपने को स्वतंत्र नियामक और प्रजापति मानकर सब नियमों से परे रहना चाहते हैं। इड़ा उन्हें नियमों के पालन की सलाह देती है, पर वे नहीं मानते। इड़ा खिन्न होकर जाना चाहती है, पर मनु अपना अधिकार जताते हुए उसे पकड़ रखते हैं। पकड़ते ही द्वार गिर पड़ता है। प्रजा जो दुर्व्यवहारों से क्षुब्ध होकर राजभवन घेरे थी, भीतर घुस पड़ती है। देवशक्तियाँ भी कुंपित हो उठती हैं। शिव का तीसरा नेत्र खुल जाता है। प्रजा का रोष बढ़ता है। मनु युद्ध करते हैं और मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं।

उधर श्रद्धा इसी प्रकार के विप्लव का भयंकर स्वप्न देखकर अपने कुमार को लेकर मनु को ढूँढती-ढूँढती वहाँ पहुँचती है। मनु उसे देखकर क्षोभ और पश्चात्ताप से भर जाते हैं। फिर उन सुन्दर दिनों को याद करते हैं जब श्रद्धा के मिलने से उनका जीवन सुन्दर और प्रफुल्ल हो गया था, जो जगत्-पीड़ा और हलचल से व्यथित था वही विश्वास से पूर्ण, शान्त, उज्ज्वल और मंगलमय बन गया था। मनु, इससे चटपट अपने को वहाँ से निकाल ले चलने को कहते हैं। जब रात हुई तब मनु उठकर चुपचाप वहाँ से न जाने कहाँ चल दिए। इनके चले जाने पर श्रद्धा और इड़ा की बातचीत होती है और इड़ा अपनी बाँधी हुई अधिकार-व्यवस्था के इस भयंकर परिणाम को देख अपना साहस छूटने की बात कहती है—

श्रम-भाग वर्ग बन गया जिन्हें
अपने बल का है गर्व उन्हें।
× × ×
अधिकार न सीमा में रहते,
परवस-निर्झर-से वे बहते।
× × ×
सब पिये मत्त लालसा-घूँट,
मेरा साहस अब गया छूट।

इस पर

श्रद्धा बोली—

बन विषम ध्वांत
सिर चढ़ी रही, पाया न हृदय,
तू विकल कर रही है अभिनय।
सुखदुख की मधुमय धूप-छाँह,
तूने छोड़ी यह सरल राह।
चेतनता का भौतिक विभाग—
कर, जग को बाँट दिया विराग।
चिति का स्वरूप यह नित्य जगत्,
यह रूप बदलता है शतशत;
कण विरह-मिलन-मय नृत्य निरत,
उल्लासपूर्ण आनन्द सतत।

अंत में श्रद्धा अपने कुमार को इड़ा के हाथों में सौंप मनु को ढूँढने निकली और उन्हें उसने सरस्वती-तट पर एक गुफा में पाया। मनु उस समय आँखें बंद किए चित् शक्ति का अंतर्नाद सुन रहे थे, ज्योतिर्मय पुरुष का आभास पा रहे थे, अखिल विश्व के बीच नटराज का नृत्य देख रहे थे। श्रद्धा को देखते ही वे हत-चेत पुकार

उठे 'श्रद्धे ! उन चरणों तक ले चल'। श्रद्धा आगे-आगे और मनु पीछे-पीछे हिमालय पर चढ़ते चले जाते हैं। यहाँ तक कि वे ऐसे महादेश में अपने को पाते हैं जहाँ वे निराधार ठहरे जान पड़ते हैं। भूमंडल की रेखा का कहीं पता नहीं। यहाँ अब कवि पूरे-पूरे रहस्यदर्शी का बाना धारण करता है और मनु के भीतर एक नई चेतना (इस चेतन से भिन्न) का उदय बतलाता है। अब मनु को त्रिदिक् (Three dimensions), विश्व और त्रिभुवन के प्रतिनिधि तीन अलग-अलग आलोक-बिंदु दिखाई पड़ते हैं जो "इच्छा', 'ज्ञान' और 'क्रिया' के केन्द्र से हैं। श्रद्धा एक-एक का रहस्य समझाती है।

पहले 'इच्छा' का मधु, मादकता और अंगड़ाईवाला माया-राज्य है जो रागारुण उषा के कन्दुक-सा सुन्दर है और जिसमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध की पारदर्शिनी पुतलियाँ रंग-बिरंगी तितलियों के समान नाच रही हैं। यहाँ चल-चित्रों की संसृति-छाया चारों ओर घूम रही है और आलोकबिन्दु को घेर कर बैठी हुई माया मुस्कुरा रही है। यहाँ चिर वसंत का उद्गम भी है और एक ओर पतझड़ भी अर्थात् सुख और दुःख एक सूत्र से बँधे हैं। यहीं पर मनोमय विश्वरागारुण चेतन की उपासना कर रहा है।

फिर 'कर्म' का श्यामल लोक सामने आता है जो धुँए-सा धुँधला है, जहाँ क्षण भर विश्राम नहीं है, सतत संघर्ष और विफलता का कोलाहल रहता है, आकांक्षा की तीव्र, पिपासा बनी रहती है, भाव राष्ट्र के नियम-दंड बने हुए हैं, सारा समाज मतवाला हो रहा है।

सब के पीछे 'ज्ञानक्षेत्र' आता है जहाँ सदा बुद्धिचक्र चलता रहता है, सुख-दुःख से उदासीनता रहती है। यहाँ के निरंकुश अणु तर्क-युक्ति से अस्ति-नास्ति का भेद करते हैं और निस्सङ्ग होकर भी मोक्ष से सम्बन्ध जोड़े रहते हैं। यहाँ केवल प्राप्य (मोक्ष या छुटकारा

भर) मिलता है, तृप्ति (आनन्द) नहीं; जीवन-रस अछूता छोड़ा रहता है जिसमें बहुत-सा इकट्ठा होकर एक साथ मिले। इससे तृषा ही तृषा दिखाई देती है।

अंत में इन तीनों ज्योतिर्मय बिन्दुओं को दिखाकर श्रद्धा कहती है कि यही त्रिपुर है। जिसमें इच्छा, कर्म और ज्ञान एक दूसरे से अलग-अलग अपने केन्द्र आप ही बने हैं। इनका परस्पर न मिलना ही जीवन की असली विडम्बना है। ज्ञान अलग पड़ा है, कर्म अलग, अतः इच्छा पूरी कैसे हो सकती है ? यह कहकर श्रद्धा मुस्कराती है जिससे ज्योति की एक रेखा तीनों में दौड़ जाती है और चट तीनों एक में मिलकर प्रज्वलित हो उठते हैं और सारे विश्व में शृङ्ग और डमरू का निनाद फैल जाता है। उस अनाहदनाद में मनु लीन हो जाते हैं।

इस रहस्य को पार करने पर फिर आनन्द-भूमि दिखलाई गई है। वहाँ अंत में इड़ा भी कुमार (मानव) को लिए पहुँचती है और देखती है कि पुरुष-पुरातन प्रकृति से मिला हुआ अपनी ही शक्ति से लहरें मारता हुआ आनन्द-सागर सा उमड़ रहा है। यह सब देख इड़ा श्रद्धा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हुई कहती है कि "मैं अब समझ गई कि मुझमें कुछ भी समझ नहीं थी। व्यर्थ लोगों को भुलाया करती थी; यही मेरा काम था।" फिर मनु कैलाश की ओर दिखा कर उस आनन्दलोक का वर्णन करते हैं जहाँ पाप-ताप कुछ भी नहीं है, सब समरस है और 'अभेद में भेद' वाले प्रसिद्ध सिद्धान्त का कथन करके कहते हैं—

अपने दुख सुख से पुलकित
यह मूर्त्त विश्व सचराचर
चिति का विराट वपु मङ्गल
यह सत्य सतत चिर सुन्दर।

अंत में प्रसादजी वहीं प्रकृति से सारे सुख, भोग, कांति, दीप्ति की सामग्री जुटा कर लीन हो जाते हैं—वे ही बल्लरियाँ, पराग, मधु, मकरन्द, अप्सराएँ बनी हुई रश्मियाँ।'

ऊपर कथावस्तु की जो रूपरेखा दी गई है उससे यह स्पष्ट है कि कामायनी में कथावस्तु का विशेष विस्तार नहीं और कथा की दृष्टि से वह विशेष महत्त्वपूर्ण भी नहीं है। एक साधारण से कथासूत्र को पकड़ कर प्रसाद ने उस पर दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक चिंतन का आरोप किया है। वे चाहते तो कल्पना के बल पर मनु का ऐतिहासिक चित्रण कर सकते और उन्हें आर्यजाति के पहले शास्ता के रूप में प्रतिष्ठित करते। कल्पना और कला का सारा बल उन्हें प्राप्त था। कामायनी के रचना-काल में ही प्रसाद ने अपनी श्रेष्ठतम कृतियाँ हमें दी हैं। उपन्यास, नाटक और कहानी के क्षेत्र में प्रसाद का जो सबसे अधिक स्थायी है वह हमें कामायनी-काल में ही मिला है। परन्तु कामायनी में जैसे प्रसादजी के हाथ बँधे हुए हैं। उन्होंने कामायनी की भूमिका में कुछ मौलिक प्रसङ्गों के समावेश की बात कही है। परन्तु ये मौलिक प्रसङ्ग बहुत कम हैं। श्रद्धा का गर्भ-जनित अवसाद और मनु का विराग नई चीज़ें हैं। इससे नारी-मनोविज्ञान के वात्सल्य पक्ष पर प्रकाश पड़ता है। इसी प्रकार की कुछ थोड़ी सामग्री अन्य स्थानों पर भी जोड़ी गई हैं। परन्तु इतनी मौलिक सामग्री के समावेश के बिना कथा का विकास ही असम्भव था, यद्यपि इससे रूपक के निर्माण में कोई भी बाधा नहीं पहुँचती। इस प्रकार हम देखते हैं कि कामायनी की कथावस्तु महत्वपूर्ण नहीं है। उसमें मनु के संघर्षों के विशद चित्र नहीं मिलते। इसी से अनेक रसों का समावेश उसमें नहीं हो सका। तीन ही पात्र हैं—मनु, श्रद्धा और मानव (मनु-पुत्र)। इन तीनों को लेकर ही कथा चलती है, परन्तु कथा का विशेष विकास नहीं होने के कारण इन तीनों चरित्रों की रूपरेखाएँ भी भलीभाँति पुष्ट नहीं हो सकी हैं। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि रूपक की

प्रवृत्ति ने कथा के स्वच्छन्द प्रवाह, रसोद्रेक और चरित्र-चित्रण में बाधा पहुँचाई है। रूपक का आश्रय छोड़ कर प्रसाद इस महाकाव्य की रचना करते तो उसका रूप ही दूसरा हो गया होता। यह अवश्य है कि आदिपुरुष की कथा होने के कारण कथावस्तु विशेष विस्तार नहीं पा सकती थी। परन्तु देव, असुर और मानवी भावों के संघर्ष से कथा को पुष्ट किया जा सकता था। जो हो, कामायनी की कथावस्तु बहुत थोड़ी है और उसपर विशेष विचार करना असम्भव है। आकुलि और किलात खल-नायकों के रूप में अवतरित हैं, जो मनु को तामस कर्मों में प्रवृत्त करते हैं। श्रद्धा सात्विक भाव की प्रतीक। मनु और इड़ा राजस भाव के। इतना ही चरित्र-वैषम्य है। केवल इतने चरित्र-वैषम्य पर कोई भी कथा पूर्ण-रूप से प्रस्फुटित नहीं हो सकती। कामायनी की निर्बलता यही है।

परन्तु जैसा हम कह चुके हैं, केवल कथा-मात्र कहना 'प्रसाद' का उद्देश्य भी नहीं है। कामायनी के माध्यम से वह कोई महत्वपूर्ण बात कहना चाहते थे। केवल कथा की दृष्टि से कंकाल, तितली और उसकी कहानियाँ महत्वपूर्ण हैं। कई ऐतिहासिक कहानियों में महाकाव्य का गौरव (Epic grandeur) सन्निहित है। परन्तु इस महाकाव्य में कथा और चरित्र-चित्रण का आग्रह न कर प्रसाद मूल मानव-भाव के विश्लेषण में लग गये हैं। कदाचित् इसका कारण यह है कि कामायनी का रचना-काल गीतों-प्रगीतों का युग था। इन गीतों-प्रगीतों में महाकाव्य का गौरव और महाकाव्य की सुषमा नहीं आ सकते थे। प्रसाद इस बात को जानते थे। वे स्वच्छंदतावाद (Romanticism) की धारा के प्रवर्तक थे। उन्होंने समय की माँग को समझा। क्लासिकल (पौराणिक) महाकाव्य लिखते तो वह छायावादी काव्य-परंपरा से दूर हट जाते। अतः उन्होंने ऐसा विषय चुना जो गीतों-प्रगीतों में प्रकाशित हो सकता था। जीवन का विकास ऐसा ही विषय था। मनु और श्रद्धा की कथावस्तु बहुत

थोड़ी थी, अतः गीतों प्रगीतों के रूप में वे अपनी विचारधारा को पुष्ट कर सकते थे। कथा की ऐतिहासिक और रूपकात्मक परंपरा से वे परिचित हैं। वे लिखते हैं—"आर्य साहित्य में मानवों के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराणों और इतिहासों में बिखरा हुआ मिलता है। श्रद्धा और मनु के सहयोग से मानवता के विकास की कथा को रूपक के आवरण में, चाहे पिछले काल में मान लेने का वैसा ही प्रयत्न हुआ हो जैसा कि सभी वैदिक इतिहासों के साथ निरुक्त के द्वारा किया गया, किन्तु मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के नव-युग के प्रवर्तक के रूप में मनु को कथा आर्यों की अनुश्रुति में दृढ़ता से मानी गई है। इसलिये वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष ही मानना उचित है। प्रायः लोग गाथा और इतिहास में मिथ्या और सत्य का व्यवधान मानते हैं; किन्तु सत्य मिथ्या से अधिक विचित्र होता है। आदिम-युग के मनुष्यों के प्रत्येक दल ने ज्ञानोन्मेष के अरुणोदय में जो भावपूर्ण इतिवृत्त संग्रहित किये थे, उन्हें आज गाथा या पौरा-णिक उपाख्यान कह कर अलग कर दिया जाता है, क्योंकि उन चरित्रों के साथ भावनाओं का भी बीच-बीच में सम्बन्ध लगा हुआ सा दीखता है। घटनाएँ अतिरंजित-सी भी जान पड़ती हैं। तथ्य-संग्रह-कारिणी तर्क-बुद्धि को ऐसी घटनाओं में रूपक का आरोप कर लेने की सुविधा होती है किन्तु उनमें भी कुछ सत्यांश घटना से सम्बद्ध है, ऐसा तो मानना ही पड़ेगा। इस कथन से यह स्पष्ट है कि प्रसाद रूपक से अधिक ऐतिहासिक तत्त्वों को ही प्रधानता देना आवश्यक समझते हैं। परन्तु ग्रन्थ-रचना के समय उन्होंने इतिहास के ऊपर रूपक की हो प्रतिष्ठा की है। इसी से इतिहास और कथा की रूप-रेखाएँ धुँधली पड़ गई हैं। कामायनी की श्रेष्ठता के अनेक कारण हैं, परन्तु इन कारणों में कथावस्तु और चरित्र-चित्रण की पूर्णता नहीं है।

चरित्र-चित्रण

'कामायनी' में कथा के साथ हृदय-बुद्धि के संघर्ष के रूपक को भी आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है। अतः पात्रों के चरित्र की रुपरेखा उतनी स्पष्ट नहीं हो पाती जितनी केवल कथा-मात्र में होती। फिर भी जहाँ कथा है, वहाँ थोड़ा चरित्र-चित्रण तो होगा ही। फिर भी हमें यह समझ लेना होगा कि कामायनी की महत्ता उसकी काव्य-कला है, उसकी दार्शनिक योजना उसे गौरवमान बना देती है, चरित्र-चित्रण का विशेष प्रयास उसमें नहीं मिलता।

पात्र भी इने-गिने हैं। मनु, श्रद्धा, मानव (मनु-श्रद्धा का पुत्र), इड़ा, असुर पुरोहित किलात-आकुलि। इन्हीं कुछ इने-गिने पात्रों को लेकर कथा आगे बढ़ती है। वास्तव में मनु, श्रद्धा और इड़ा ही प्रधान पात्र हैं। शेष सब गौण हैं। इन तीनों पात्रों को ही प्रसाद के दार्शनिक रूपक का भार ढोना पड़ता है। इसी से वे कुछ छाया-छाया रह जाते हैं।

पहले हम मनु को लेंगे।

'चिन्ता' नाम के प्रथम सर्ग में ही मनु का परिचय, हमें मिल जाता है। वे देव-संस्कृति के सुन्दरतम प्रतिनिधि हैं। देव-संस्कृति के विलास और उच्छृङ्खल आनन्दवाद की परिणति वे देख चुके हैं—

> चलते थे सुरभित अंचल से
> जीवन के मधुमय निश्वास;
> कोलाहल में मुखरित होता
> देवजाति का सुख-विश्वास
> सुख, केवल सुख का वह संग्रह
> केन्द्रीभूत हुआ इतना;

छायापथ में नव तुषार का
सघन मिलन होता जितना
सब कुछ थे स्वायत्त विश्व के
बल, वैभव, आनन्द अपार
उद्वेलित लहरों सा, होता
उस समृद्धि का सुख-संचार
कीर्ति, दीप्ति, शोभा थी नचती
अरुण किरन-सी चारों ओर
सप्तसिंधु के तरल कणों में,
द्रुमदल में आनन्द - विभोर

इस दैव-वैभव के नाश ने मनु के मन में चिन्ता का उदय किया। यह नाश क्यों हुआ? क्या कुछ कम था? प्रकृति के इस कोप का क्या कारण हो सकता है? चारों ओर मौन, नाश, विध्वंस, अँधेरा! चिन्ताग्रस्त मनु में जो जिज्ञासा उठती है, वह उनके हृदय के गहनतम तल को भी हिला देती है। वह अवसाद से भर जाते हैं। जीवन-मृत्यु के रहस्य पर विचार करते हुए वह इस सत्य पर पहुँचते हैं—जीवन मृत्यु का क्षुद्र अंश है। नीलघनमाला में जैसे विद्युत[1], उसी तरह मृत्यु के विराट विस्तार में यह जीवन की झलक है। इस तरह सर्ग के आरम्भ में हम मनु के महान् व्यक्तित्व को निराशा से दबा हुआ पाते हैं।[2]

---

१ जीवन तेरा क्षुद्र अंश है व्यक्त नील घन-माला में
सौदामिनी संधि-सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला में

२ पहला संचित अग्नि जल रहा पास मलिन द्युति रवि कर से,
शक्ति और जागरण - चिह्न-सा लगा धधकने अब फिर से,
जलने लगा निरंतर उनका अग्निहोत्र सागर के तीर,
मनु ने तप में जीवन अपना किया समर्पण होकर धीर

परन्तु मनु के यौवनमय स्वस्थ व्यक्तित्व को निराशा अधिक देर नहीं घेर सकती थी। धीरे-धीरे आशा का संचार होता है। प्रकृति के बवंडर के शान्त होने पर मंगलमय प्रभात का आगमन होता है। मनु हिमालय की एक विस्तृत गुहा में निवास करने लगते हैं। उन्होंने देखा, पास ही पहली संचित अग्नि जलने लगी है। अब तप ही उनका जीवन-मार्ग होना चाहिये। कर्म (यज्ञ) की शीतल छाया के नीचे वे अपना शेष जीवन बिता देना चाहते हैं। प्रकृति उन्हें आश्वस्त करती है। बहुत दिनों तक यह एकांत तपस्या चलती है।[२] मनु को लगा, उन्होंने अनंत शान्ति प्राप्त कर ली है। परन्तु सहसा संयम का बाँध टूट गया, आँखों के आगे एक अतींद्रिय स्वप्न-लोक जगाने लगा।

तभी श्रद्धा का आगमन होता है। आशा को प्रेम और सौन्दर्य की दृढ़ भित्ति मिलती है। श्रद्धा मनु की मनःस्थिति समझ लेती है। वह कहती है—

दुःख के डर से तुम अज्ञात
जटिलताओं का कर अनुमान,
काम से झिझक रहे हो आज,
भविष्यत् से बन कर अनजान॥
कर रही लीलामय आनंद,
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त,

सजग हुई फिर से सुरसंस्कृति, देवयजन की वरमाया
उन पर लगी डालने अपनी कर्ममयी शीतल छाया

२ तप से संयम का संचित बल तृषित और व्याकुल था आज;
अट्टहास कर उठा रिक्त का वह अधीरतम, सूना राज
धीर समीर परस से पुलकित विकल हो चला शांत शरीर;
आशा की उलझी अलकों से उठी लहर मधुगंध अधीर

विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में रूब होते अनुरक्त
काम मंगल से मंडित श्रेय
सर्ग, इच्छा का है परिणाम,
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल
बनाते हो असफल भवधाम।

श्रद्धा के अंग हैं दया, माया, ममता, मधुरिमा, अगाध विश्वास। इन्हें लेकर श्रद्धा मनु के साथ रह जाती है। एक नई कल्याणी आकांक्षा से मनु स्पंदित हो उठते हैं।४

'काम' और 'वासना' सर्गों में मनु के प्रेमी-रूप का चित्रण हुआ है। श्रद्धा (कामायनी) अतिथि रूप में मनु के साथ रह रही थी, वही मनु की प्रेयसी वन जाती हैं। मनु पिछली भूली बात याद करते हैं—यह तो उनकी जन्मसंगिनी प्रलय के पूर्व की परिचिता कामबाला कामायनी ही है। इस मधुर मिलन में मनु के कोमल व्यक्तित्व का बड़ा सुन्दर चित्रण कामायनी में मिलेगा—

---

४ विधाता की कल्याणी सृष्टि सफल हो इस भूतल पर पूर्ण
पटें सागर, बिखरें ग्रह-पुंज और ज्वालामुखियाँ हों चूर्ण
उन्हें चिनगारी सदृश सदर्प कुचलती रहे खड़ी सानंद
आज से मानवता की कीर्ति अनिल, भू, जल में रहे न बन्द
जलधि के फूटें कितने उत्स द्वीप, कच्छप डूबें-उतराँय
किन्तु वह खड़ी रहे दृढ़ मूर्ति अभ्युदय का कर रही उपाय
विश्व की दुर्बलता बल बने, पराजय का बढ़ता व्यापार
हँसाता रहे उसे सविलास शक्ति का क्रीड़ामय संचार
शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय
समन्वय उसका करे समस्त, विजयिनी मानवता हो जाय

मनु निरखने लगे ज्यों-ज्यों भामिनी का रूप,
वह अनंत प्रगाढ़ छाया फैलती अपरूप,
बरसता था मदिर कण सा स्वच्छ सतत अनंत,
मिलन का संगीत होने लगा था श्रीमंत
छूटती चिनगारियाँ उत्तेजना उद्भ्रांत,
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशांत
वातचक्र समान कुछ था बाँधता आवेश,
धैर्य का कुछ भी न मनु के हृदय में था लेश
कर पकड़ उन्मत्त से हो लगे कहने, "आज,
देखता हूँ दूसरा कुछ मधुरिमामय साज !
वही छवि ! हाँ वही जैसे ! किन्तु क्या यह भूल ?
रही विस्मृति सिंधु में स्मृति नाव विकल अकूल
जन्मसंगिनि एक थी जो कामबाला, नाम
मधुर श्रद्धा था, हमारे प्राण को विश्राम—
सतत मिलता था उसी से, अरे जिसको फूल,
दिया करते अर्घ में मकरंद सुषमा भूल"

मनु के इस प्रेमी-व्यक्तित्व में पहला प्रकंपन 'कर्म' सर्ग में आता है। प्रसाद ने मनु के इस स्वभाव-परिवर्तन को रूपकालंकार द्वारा बड़ी सजीवता से चित्रित किया है—

कर्मसूत्र संकेत सदृश थी
सोम लता तब मनु को;
चढ़ी शिंजिनी-सी, खींचा फिर
उसने जीवन-धनु को
हुए अग्रसर उसी मार्ग में
छुटे तीर-से फिर वे
यज्ञ-यज्ञ की कटु पुकार से
रह न सके अब स्थिर वे

उधर मनु महासाधन में लगे हुए थे। इधर जलप्लावन के बाद बचे हुए असुर पुरोहित (किलात और आकुलि) आमिष-लोलुप जिह्वा के कारण व्याकुल हैं। उन्होंने मनु की हिंसावृत्ति को उभारा और उन्हें एक बार फिर कर्मकांड पथ पर ले चलना चाहा। मनु स्वयं 'कर्म' पर चिंतन कर रहे थे। कर्मयज्ञ (कर्मकांड) पर उन्हें विश्वास था, परन्तु योग्य पुरोहित निश्चित नहीं हो रहा था। आकुलि और किरात ने पहुँच कर जब 'मित्र-वरुण' की दुहाई दी, मनु का 'नूतनता का लोभी' मन मान गया। यज्ञ शुरू हुए। पशु-बलि होने लगी। मनु के सात्विक भावों पर तामसी वृत्तियों की विजय हुई—

> यज्ञ समाप्त हो चुका तो भी
> धधक रही थी ज्वाला;
> दारुण दृश्य! रुधिर के छींटे!
> अस्थिखंड की माला
> वेदी की निर्मम प्रसन्नता,
> पशु की कातर वाणी,
> मिल कर वातावरण बना था
> कोई कुत्सित प्राणी

मनु यज्ञ (पशुबलि) के द्वारा अपने नीरस जीवन में थोड़ी सक्रियता, थोड़ा रस लाना चाहते थे। परन्तु श्रद्धा ने यज्ञ में कोई भाग नहीं लिया, इससे उनको आनन्द की अनुभूति नहीं हो सकी। श्रद्धा (कामायनी) मनु को बताती है कि जिसे मनु सुख समझने चले हैं, वह भारी मरु-मरीचिका है। सुख तो वह नहीं है। दोनों में वादविवाद चलता है। मनु इंद्रिय-सुख को ही सुख मान लेते हैं—

> तुच्छ नहीं है अपना सुख भी
> श्रद्धे! वह भी कुछ है;

दो दिन के इस जीवन का तो
वही चरम सब कुछ है।
इंद्रिय की अभिलाषा जितनी
सतत सफलता पावे,
जहाँ हृदय की तृप्ति विलासिनि
मधुर मधुर कुछ गावे।

रोम-हर्ष हो उस ज्योत्सना में
मृदु मुस्कान खिले तो;
आशाओं पर श्वास निछावर
होकर गले मिले तो

वह श्रद्धा को भी सोम का पान कराना चाहते हैं। यही सोम तो देवताओं के आनन्दवाद का प्रतीक है। परन्तु सात्विक-भावा श्रद्धा अस्वीकार कर देती है।

अब मनु के इंद्रियजन्य सुखों और श्रद्धा के आत्मसमर्पण के सुखों का संवर्ष चलता है। प्रतिदिन मनु यह जानते जाते हैं कि श्रद्धा पर उनका अधिकार नहीं है। वह उसके सुख से ईर्ष्या करने लगते हैं। अंत में एक दिन उन्हें पता लगता है कि श्रद्धा गर्भिणी है। अब इंद्रिय-सुख की और अधिक आशा नहीं रह जाती। वह भाग खड़े होते हैं। सुख मिले, अधिक सुख, निरन्तर अधिक सुख। वह नहीं जानते कि इंद्रिय-सुख केवल प्रवंचना-मात्र है।

वर्षों तक सुख की इस प्रवंचना के फेर में मनु मारे-मारे फिरते हैं। अन्त में वे सारस्वत प्रदेश में पहुँचते हैं। धीरे-धीरे उनमें चिंतन का उदय होता है और वह जीव-मृत्यु, सुख-दुख जैसी गंभीर समस्याओं पर विचार करते हैं। वहीं इड़ा से उनका परिचय होता है। श्रद्धा थी सात्विक-भावा। इड़ा है राजसिक। अधिकार, वासना, आकांक्षा और बुद्धि-विलास की प्रतीक इड़ा मनु के मन को

आकर्षित करती है। मनु इड़ा के सौन्दर्य से आकर्षित नहीं होते उसके बुद्धि-विलास, उसके तर्क और उसके ऐश्वर्य पर मुग्ध हो जाते हैं। निरंतर इंद्रिय-प्रेरणा से मनु उद्दाम कार्य में प्रवर्तित होते हैं और सारस्वत प्रदेश के लिए नये-नये साधन, नये कर्म योजित करते हैं। देवसृष्टि का नाश हो गया था। उसके अवशिष्ट चिन्हों पर एक यांत्रिक और अनुदार मानव सभ्यता का जन्म हो गया। परन्तु बुद्धि-विलासी यह यांत्रिक सभ्यता-मन को कब तक शांति देती। मनु तो इड़ा पर ही अधिकार पाना चाहने लगे हैं। एक अतृप्त प्रेम की ज्वाला भीतर ही भीतर उनके हृदय में सुलग रही थी—इड़ा ने इस ज्वाला को चेतन कर दिया, तो वह इससे बच भी नहीं सकती। संघर्ष खंड में हम मनु को बौद्धिक और यांत्रिक सभ्यता के बीच में भीषण उथल-पुथल के नेता के रूप में पाते हैं। मनु के एक नए, तर्क-प्रधान, तेजस्वी, कृत-पुरुष रूप से हमारा परिचय होता है। यही तेजोमय पुरुष 'इड़ा' को पूर्ण रूप से पाना चाहता है—

> और एक क्षण वह, प्रमाद का फिर से आया,
> इधर इड़ा ने द्वार ओर निज पैर बढ़ाया!
> किन्तु रोक ली गई भुजाओं से मनु की वह,
> निस्सहाय हो दीन दृष्टि देखती रही वह

मनु बलपूर्वक इड़ा को पाना चाहते हैं—

> "...किन्तु आज तुम बंदी हो मेरी बाहों में,
> मेरी छाती में," फिर सब डूबा आहों में!

इस समय मनु अत्यन्त दुर्बल हो रहे हैं। प्रसाद ने मनु को देवसृष्टि के रूप में हमारे सामने उपस्थित नहीं किया है, वह साधारण दुर्बल-सबल मानव ही घोषित हैं। यह बात उस युग की उस विचारावली का समर्थन करती है जो मनुष्य से बड़ा देवता कोई स्वीकार नहीं करती और देवता को भी मानव-भूमि पर उतार लाती है।

सारस्वत प्रदेश में प्रजा और मनु में जा संघर्ष हुआ उसके फल-स्वरूप मनु आहत हुए और श्रद्धा मानव (कुमार) को लेकर वहाँ आ पहुँची। मनु को अतीत ग्लानि होती है और इसी ग्लानि के फलस्वरूप साधारण मानव की तरह वह पलायन का मार्ग ही स्वीकार कर लेते हैं।

परन्तु यह पालायन का मार्ग ही अन्त में मंगलमार्ग बन जाता है। मनु आनन्दवाद, कर्मवाद और ज्ञानवाद का अनुभव कर चुके। अब उन्होंने तप के द्वारा शांति प्रात करनी चाही। एक निर्जन हिमप्रदेश में वह तप करने लगे। परन्तु हृदय की प्रवृत्तियाँ शांत न हो पाईं अंत में श्रद्धा ढूँढ़ती हुई आई और उसने मनु को आदर्श जीवनपथ की ओर उन्मुख किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनु के चित्रण में प्रसाद अत्यन्त सतर्क रहे हैं। उन्होंने उन्हें सतत: गतिमय (Dynamic), सतत संघर्षमय, उच्च जीवनाकांक्षी आदि-मानव के रूप में चित्रित किया। उनका जो रूप हमें 'कामायनी' में मिलता है, वह ऐतिहासिक नहीं है। केवल 'संघर्ष' सर्ग में हमें ऐतिहासिक वैवस्वत मनु के दर्शन होते हैं। शेष सर्गों में वह मानव के ही संस्कारों से ओत-प्रोत हैं।

अब लीजिये श्रद्धा।

'श्रद्धा' (कामायनी) ही प्रसाद की नायिका है। अपनी सारी शक्ति को उन्होंने उसी पर केन्द्रित कर दिया है। वह दुर्बल मनु को मंगलमय जीवनपथ के दर्शन कराती है। उसी के नाम पर ग्रंथ का नामकरण भी हुआ है। श्रद्धा के सारे व्यक्तित्व को 'नारीत्व' और 'श्रद्धा' इन दो शब्दों के भीतर भरा जा सकता है। वह अकस्मात ही मनु को प्राप्त होकर उसी की बन जाती है। नारी के सर्वस्व आत्मसमर्पण की वह प्रतीक है। यह मन-बुद्धि का समर्पण नहीं, हृदय का समर्पण है। वास्तव में श्रद्धा के संस्कार बराबर मनु से ऊँचे रहे हैं। वह प्रेम, श्रद्धा, आत्मबलिदान, वात्सल्य, क्षमा और मातृत्व की श्रेष्ठ प्रतीक है। मनु, श्रद्धा और इड़ा को मूलतः रूपकों के रूप में

लेकर भी प्रसाद रूपक तक ही सीमित नहीं रह सके हैं। उन्होंने अज्ञात रूप से ही एक अलौकिक नारी की सृष्टि कर दी है। यह नारी है श्रद्धा! प्रकृति और मानव के श्रेष्ठतम गुणों का समाहार उसमें हुआ है। पति के प्रेम और भावी मातृत्व से आश्वस्त नारी का कैसा सुन्दर चित्र है यह। श्रद्धा इकेली बैठी कह रही है—

तुम दूर चले जाते हो जब
तब लेकर तकली यहाँ बैठ;
मैं उसे फिराती रहती हूँ
अपनी निर्जनता बीच पैठ
मैं बैठी गाती हूँ तकली के
प्रतिवर्त्तन में स्वर-विभोर—
चल री तकली धीरे धीरे
प्रिय गये खेलने को अहेर
जीवन का कोमल तंतु बढ़े
तेरी ही मंजुलता समान;
चिर नग्न प्राण उनमें लिपटें
सुन्दरता का कुछ बढ़े मान

उसकी क्षमाशीलता देखिये। सारस्वत नगर में वह चिल्लाती हुई घूमती है—

"अरे बता दो मुझे दया कर
कहाँ प्रवासी है मेरा?
उसी बावले से मिलने को
डाल रही हूँ मैं फेरा।
रूठ गया था अपनेपन से
अपना सकी न उसको मैं,
वह तो मेरा अपना ही था
भला मनाती किसको मैं।

यही भूल अब शूल सदृश हो
साल रही उर में मेरे,
कैसे पाऊँगी उसे मैं
कोई आकर कह दे रे !"

आहत मनु के सिरहाने पहुँच कर

श्रद्धा नीरव सिर सहलाती
आँखों में विश्वास भरे
मानो कहती "तुम मेरे हो
अब क्यों कोई वृथा डरे ?"

'दर्शन', 'रहस्य' और 'आनन्द' शीर्षक अंतिम सर्गों में तो वह अपने पार्थिव व्यक्तित्व से ऊपर, बहुत ऊपर, उठ कर कल्याण सूत्री मानवता मात्र रह गई है। वह जैसे रहस्य की सूत्रधारिणी हो। दान्ते के 'वीतरिस' (Beatrice) और इक़बाल के 'मौलाना रूमी' को जो स्थान प्राप्त है वह कामायनी में श्रद्धा को। बीतरिस और रूमी दोनों कवि (यहाँ मनु) को आध्यात्मिक भूमि के उच्चतर, उच्चतम लोगों की सैर कराते हैं और उसे नये जीवनदर्शन का आदेश देते हैं। श्रद्धा भी मनु को प्रगतिपथ के दर्शन कराती है। हृदय, मन और कर्म के त्रैत के समन्वय में ही प्राकृत आनन्द की श्रद्धाभूमि सम्भव है—श्रद्धा यह उपदेश सार्वभौमिक और सार्वकालिक है।

'इड़ा' के चरित्र का चित्रण केवल तीन सर्गों में हुआ है—इड़ा, सङ्घर्ष और निर्वेद। इड़ा श्रद्धा के विपरीत है। वह बुद्धिमयी है, श्रद्धामयी नहीं। उसके रूप में जलन अधिक है, अमृत कम। तर्कजाल से ढकी रहने के कारण वह विशेष आकर्षक अवश्य है। उसी के आकर्षण से मनु फिर धर्मपथ में, लीन होते हैं और प्रजा को अपने विरुद्ध कर लेते हैं। बुद्धि के अत्यधिक आग्रह का प्रभाव है सङ्घर्ष। जब इड़ा को श्रद्धा के दर्शन होते हैं तो वह अपनी ग़लती समझ

जाती है। इड़ा श्रद्धा का मिलन कवि ने इस प्रकार चित्रित किया है—

इड़ा आज कुछ दुखित हो रही
दुखियों को देखा उसने,
पहुँची पास और फिर पूछा
"तुमको विसराया किसने ?

इस रजनी में कहाँ भटकती
जाओगी तुम बोलो तो,
बैठो आज अधिक चंचल हूँ
व्यथा-गाँठ निज तोलो तो।

जीवन की लम्बी यात्रा में
खोये भी हैं मिल जाते,
जीवन है तो कभी मिलन है
कट जातीं दुख की रातें।"

श्रद्धा के सहज-सरल व्यवहार से इड़ा में महान परिवर्तन हो जाता है और वह मानव (मनु-श्रद्धा का पुत्र) को साथ रखने के लिए तैयार हो जाती है। अंतिम सर्ग में हम इड़ा और मानव को मानसरोवर के यात्री रूप में देखते हैं। एक नये आनन्द का विधान आरम्भ होता है।

इन पात्रों के अतिरिक्त 'कामायनी' में कुछ गौण पात्र भी आते हैं असुर अकुलि और किलात एवं मानव (मनुपुत्र)। इन पात्रों की रूपरेखाएँ विशेष रूप से स्थिर नहीं हो पाई हैं। आकुलि और किलात स्पष्ट रूप से असुर कहे गये हैं और पशु-बलि, हिंसा, अग्निकांड, द्वेष-विद्वेष (प्रतिहिंसा) और कर्मकांड (यज्ञादि) उनके चरित्र के मुख्य गुण कहे गए हैं। मनु के पशु को देख दोनों का मन चंचल हो जाता है। वे परस्पर इस प्रकार बातें करते हैं—

क्यों किलात ! खाते-खाते तृण
और कहाँ तक जोऊँ;
कब तक मैं देखूँ जीवित पशु
घूँट लहू का पीऊँ !
क्या कोई इसका उपाय ही
नहीं कि इसको खाऊँ ?
बहुत दिनों पर एक बार तो
सुख के बीन बजाऊँ ?

इस प्रकार के एक दो तूलिका के हलके स्पर्शों से ही कवि ने इन गौण चरित्रों की रूपरेखा पुष्ट कर दी है । 'मानव' में वात्सल्य रस का बड़ा सुन्दर निरूपण हुआ और उसके चरित्र की रूपरेखा इसी के आधार पर खड़ी की गई है ।

ऊपर जो लिखा गया है उससे यह स्पष्ट है कि इस महाकाव्य में प्रसाद ने चरित्रचित्रण की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है । अपनी कहानियों और उपन्यासों में उन्होंने चरित्र-चित्रण में इतनी पटुता दिखाई है कि सहसा विश्वास नहीं होता कि प्रसाद कामायनी के पात्रों में वह रंग नहीं भर सके जो उनकी विशेषतः थी । इसका कारण क्या है ? जान पड़ता है, प्रसाद काव्यों महाकाव्यों का एकमात्र विषय रस मानते थे । अपने एक निबंध में उन्होंने अपने दृष्टिकोण को इस तरह प्रकाशित किया है—"वर्तमान साहित्यिक प्रेरणा—जिसमें व्यक्ति-वैचित्र्य और यथार्थवाद मुख्य हैं—मूल में संशोधनात्मक ही है । कहीं व्यक्ति से सहानुभूति उत्पन्न करके समाज का संशोधन है, और कहीं समाज की दृष्टि से व्यक्ति का ! किंतु दया और सहानुभूति उत्पन्न करके भी वह दुख को अधिक प्रतिष्ठित करता है, निराशा को अधिक आश्रय देता है । भारतीय रसवाद में मिलन, अप्रतिम सुख की सृष्टि मुख्य है । रस में लोक-मंगल की कल्पना प्रच्छन्न रूप से अंतर्हित है । सामाजिक

स्थूल रूप से नहीं किन्तु दार्शनिक सूक्ष्मता के आधार पर। वासना से ही क्रिया संपन्न होती है, और क्रिया के संकलन से व्यक्ति का चरित्र बनता है। चरित्र में महत्ता का आरोप हो जाने पर, व्यक्तिवाद का वैचित्र्य उन महती लीलाओं से विद्रोह करता है। यह है पश्चिम की कला का गुण—फलतः रसवाद में वासनात्मक स्थित मनोवृत्तियाँ, जिनके द्वारा चरित्र की पुष्टि होती है, साधारणीकरण के द्वारा आनन्द-मय बना दी जाती हैं, इसलिये वह वासना का संशोधन न करके उनका साधारणीकरण करता है। इस समीकरण के द्वारा जिस अभिन्नता की सृष्टि वह करता है, उसमें व्यक्ति की विभिन्नता, विशिष्टता हट जाती है; और साथ ही सब तरह की भावनाओं को एक धरातल पर हम एक मानवीय वस्तु कह सकते हैं। सब प्रकार के भाव एक दूसरे के पूरक बनकर, चरित्र और वैचित्र्य के आधार पर रूपक बनाकर, रस की सृष्टि करते हैं। रसवाद की यही पूर्णता है।" इसी रसवाद को दृष्टि में रख कर चरित्र-वैचित्र्य का प्रयास प्रसाद ने नहीं किया। उन्होंने 'कामायनी' के द्वारा एक विशिष्ट रस-सृष्टि, एक विशिष्ट अंतर्दृष्टि देने की चेष्टा की और वह इसमें सफल भी हुए। इन उद्देश्यों के कारण ही कामायनी के पात्रों का पूरा-पूरा चरित्र-चित्रण नहीं हो सका है। परन्तु इससे 'रूपक' (allegory) को सहारा ही मिलता है। यदि पात्रों की व्यक्तिगत रूपरेखाएँ अधिक पुष्ट होतीं, तो व्यंजनार्थ में बाधा ही पड़ती।

(४) रस

आधुनिक कवि रसवादी नहीं हैं। वे प्रभाववादी हैं। इसी से अलंकार-योजना की विचित्र-विचित्र विधियाँ तो उनके काव्य में मिलेंगी, रस-निरूपण के नाम पर अधिक नहीं मिलेगा। प्रसाद की अपनी रस की परिभाषा में और प्राचीन आचार्यों की रस की परिभाषा में भी अंतर है। प्रसाद काव्य को कवि की संकल्पात्मक अनुभूति मानते हैं। इस

संकल्पात्मक अनुभूति से कवि को जिस 'आनन्द' की प्राप्ति होती है, वही रस है। नाट्यशास्त्र में 'विभावानु भाव व्यभिचारि परिवृत्त, स्थायी भावो रसनाम लभते' कह कर भरत ने रसानुभूति के लिए जो विभाव, अनुभाव और व्यभिचारियों के संयोग का निदान किया है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह परिभाषा नाटकों तक ही सीमित है। काव्य के क्षेत्र में इसका अधिक मूल्य नहीं।

परन्तु फिर भी अनेक स्थल ऐसे हैं जो रसोद्रेक के उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में उपस्थित किये जा सकते हैं। 'संघर्ष' सर्ग हैं में वीररस का सुन्दर चित्रण है। सारस्वत प्रदेश की प्रजा किरात और आकुलि से वहकाई जाकर मनु पर आक्रमण कर देती है। परन्तु वे बड़ी वीरता से उसका प्रतिकार करते हैं :

छूट रहे नाराच धनुष से तीक्ष्ण नुकीले,
टूट रहे नभ धूमकेतु अति नीले पीले!
अंधड़ था बढ़ रहा, प्रजा दल सा झुँझलाता,
रण-वर्षा में शस्त्रों सा बिजली चमकाता
किन्तु क्रूर मनु वारण करते उन बाणों को
बढ़े कुचलते हुए खड्ग से जन-प्राणों को
तांडव में थी तीव्र प्रगति, परमाणु विकल थे,
निर्यात विकर्षणमयी, त्रास से सब व्याकुल थे।
मनु फिर रहे अलात चक्र से उस घनतम में,
वह रक्तिम उन्माद नाचता कर निर्मम में।
उठा तुमुल रणनाद, भयानक हुई अवस्था,
बढ़ा विपक्ष समूह, मौन पददलित व्यवस्था।
आहत पीछे हटे, स्तंभ से टिक कर मनु ने,
श्वास लिया, टङ्कार किया दुर्लक्ष्यी धनु ने।

वात्सल्य में भरी हुई प्रत्याशित माता का एक स्वप्न देखिये। गर्भित श्रद्धा पुत्र की भविष्य-चिंता कर रही है—

सूना न रहेगा यह मेरा
लघु विश्व कभी जब रहोगे न;
मैं उसको लिये बिछाऊँगी
फूलों के रस का मृदुल फेन
झूले पर उसे झुलाऊँगी
दुलरा कर लूँगी वदन चूम;
मेरी छाती में लिपटा इस
घाटी में लेगा सहज घूम।

वह आवेगा मृदु मलयज-सा
लहराता अपने मसृण बाल;
उसके अधरों पर फैलेगी
नव मधुमय स्मिति लतिका-प्रवाल।
अपनी मीठी रसना से वह
बोलेगा ऐसे मधुर बोल;
मेरी पीड़ा पर छिड़केगा
जो कुसुम-धूलि मकरन्द घोल।

श्रद्धा-मानव का यह चित्र भी देखिये। श्रद्धा मानव को लेकर मनु की खोज में निकली है। पथ-क्लांति से ग्रस्त बालक पूछता है—

"माँ! तू चल आई दूर इधर,
संध्या कब की चल गई उधर;
इस निर्जन में अब क्या सुन्दर—
तू देख रही, हाँ बस चल घर
उसमें से उठता गंध धूम
श्रद्धा ने वह मुख लिया चूम
"माँ! क्यों तू है इतनी उदास,
क्या मैं हूँ तेरे नहीं पास;

तू कई दिनों से यों चुप रह,
क्या सोच रही है ? कुछ तो कह;
यह कैसा तेरा दुःख दुसह,
जो बाहर भीतर देता दह;
लेती ढीली सी भरी साँस,
जैसे होती जाती हताश।"

'कामायनी' के गंभीर कथा-प्रवाह में वीभत्स, भयानक, अद्भुत और हास्य रसों का निरूपण नहीं मिलेगा। हाँ 'चिंता' सर्ग में प्रलय-प्लावन का वर्णन करते हुए प्रकृति की भयंकरता के कुछ सुन्दर चित्र मिलेंगे—

उधर गरजतीं सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों सी;
चली आ रहीं फेन उगलतीं
फन फैलाये व्यालों सी।
धँसती धरा, धधकती ज्वाला,
ज्वालामुखियों के निश्वास;
और संकुचित क्रमशः उसके
अवभव का होता था ह्रास
सबल तरंगाघातों से उस
क्रुद्ध सिंधु के, विचलित सी
व्यस्त महाकच्छप सी धरणी
ऊभ-चूभ थी विकलित सी

मनु की यह जिज्ञासा अद्भुत रस के भीतर ही स्थान पायेगी—

महानील इस परम व्योम में,
अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान,
ग्रह, नक्षत्र और विद्युतकण
किसका करते ये संधान!

छिप जाते हैं और निकलते
आकर्षण में खिंचे हुए;
तृण वीरुध लहलहे हो रहे
किसके रस से सिंचे हुए?
सिर नीचा कर किसकी सत्ता
सब करते स्वीकार यहाँ;
सदा मौन हो प्रवचन करते
जिसका, वह अस्तित्व कहाँ?
हे अनन्त रमणीय कौन तुम?
यह मैं कैसे कह सकता?
कैसे हो? क्या हो? इसका तो
भार विचार न सह सकता
"हे विराट! हे विश्वदेव! तुम
कुछ हो ऐसा होता मान"
मंद गँभीर धीर स्वर संयुत
यही कर रहा सागर गान।

इस प्रकार की जिज्ञासा-प्रधान रहस्यात्मक उक्तियाँ कामायनी में भरी पड़ी हैं। छायावाद काव्य में जिस दार्शनिक जिज्ञासा की प्रधानता है उसका सबसे सुन्दर उन्मेष यहीं मिलेगा।

'श्रृङ्गार' के सुन्दर चित्र कामायनी में मिलते हैं। प्रेम की भूमि पर खड़ी कथा में ऐसा होना निश्चित था। 'काम' सर्ग में प्रकृति से इंगित लेकर मनु अपने मन में प्रेम के ताने-बाने बुनते हैं। अतिथि रूप में कामायनी (श्रद्धा) को पाकर वे प्रसन्न हैं। धीरे-धीरे वह अन्तःपुर में प्रवेश करती है। इस सर्ग में अभिलाषा (पूर्वानुराग), हर्ष, विस्मय, असूया, उत्कंठा, विकलता और अधैर्य का सुन्दर गीतात्मक चित्रण मिलता है। पशु के साथ श्रद्धा वहाँ आ रही है जहाँ मनु बैठे हैं—

×××आ रहा था पशु अतिथि के साथ;
हो रहा था मोह करुणा से सजीव सनाथ!
चपल कोमल कर रहा फिर सतत पशु के अंग;
स्नेह से करता चमर उद्ग्रीव हो वह संग
कभी पुलकित रोमराजी से शरीर उछाल
भाँवरों से निज बनाता अतिथि सन्निधि जाल
कभी निज भोले नयन से अतिथि वदन निहार;
सकल संचित स्नेह देता दृष्टि पथ से ढार

मनु इस सुन्दर सुषमा को अनिमेष दृष्टि से देख रहे हैं। प्रथम प्रणय की जो पुलकमयी अनुभूति प्रेमी की मन में होती है, उसे इस सुकुमारता से कौन चित्रित कर सका है? मनु श्रद्धा से कहते हैं—

मधु बरसती विधु किरन हैं काँपती सुकमार।
पवन में है पुलक मंथर, चल रहा मधु-भार।
तुम समीप, अधीर इतने आज क्यों हैं प्राण?
छक रहा है किस सुरभि से तृप्त होकर घ्राण?
आज क्यों संदेह होता रूठने का व्यर्थ;
क्यों मनाना चाहता सा बन रहा असमर्थ!
धमनियों में वेदना-सा रक्त का संचार;
हृदय में है काँपती धड़कन, लिए लघु भार।

(वासना)

पुरुष के प्रति स्त्री के आत्मसमर्पण का इतना सुन्दर, इतना लाक्षणिक चित्र और कहाँ है—

धूम लतिका-सी गगन-तरु पर न चढ़ती दीन,
दबी शिशिर-निशीथ में ज्यों ओस-भार नवीन।
झुक चली सव्रीड़ वह सुकुमारता के भार,
लद गई पाकर पुरुष का नर्ममय उपचार;

और वह नारीत्व का जो मूल मधु अनुभाव,
आज जैसे हँस रहा भीतर बढ़ाता चाव।
मधुर व्रीड़ा मिश्र चिन्ता साथ ले उल्लास,
हृदय का आनंद कूजन लगा करने रास।
गिर रहीं पलकें, झुकी थी नासिका की नोक,
भ्रू-लता थी कान तक चढ़ती रही बे-रोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल,
खिला पुलक-कदंब सा था भरा गद्गद् बोल।

सच तो यह है कि प्रसाद के काव्य में 'प्रेम' और 'प्रकृति' को सबसे महत्वपूर्ण स्थान मिला है। 'प्रेमपथिक' में उन्होंने प्रेम-संबन्धी कुछ ऐसी नई सूक्तियाँ उपस्थित की थीं जो उस समय अत्यंत क्रांतिकारी थीं। उनकी यह दो पंक्तियाँ—

इस पथ का उद्देश्य नहीं श्रांत भवन में टिक रहना,
किन्तु पहुँचना इस मंजिल पर जिसके आगे राह नहीं।

शीघ्र ही लोकप्रसिद्धि प्राप्त कर गईं। इन प्रंक्तियों ने 'प्रेम' को अत्यंत विस्तार दे दिया था और वह इतना रहस्यमय हो उठा कि उसे आकाशचारी प्रेम (platonic love) कहा जा सकता था। प्रेम के विभिन्न रूपों, विभावों-अनुभावों, यहाँ तक कि कायिक सात्विकों का जितना भांडार प्रसाद के काव्य में है उतना सूरदास के काव्य को छोड़ कर और अन्य में नहीं। लाक्षणिक पद्धति पर प्रेम की स्वतंत्र और उदात्त विवेचना अन्यत्र मिलना असंभव है। कामायनी इस प्रेम-काव्य की परिणति है। कथा चाहे रूपक ही हो परन्तु मूलरूप से वह संयोग, वियोग और पुनर्मिलन की कथा ही है।

परन्तु यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि आज के कवि और आलोचक जिसे 'रस' मानते हैं, वह प्राचीन काल के रस से भिन्न है। वस्तुतः वह 'भाव' मात्र है। रस की उसमें केवल व्यंजना होती है।

आधुनिक काव्य की रसदृष्टि बदल गई है, इसमें संदेह नहीं। हिंदी साहित्य और रस के संबंध में विचार करते हुए प्रसादजी कहते हैं कि "हिंदी के आरम्भ में श्रव्य-काव्यों की प्रचुरता थी। उनमें भी रस की धारा अपने मूल उद्गम स्थान से अलग होकर केवल चिर-विरहोन्मुख प्रेम के स्रोत में वही। यह बाढ़ वेगवती रही, परन्तु उसमें रस की पूर्णता नहीं।" (काव्य और कला, पृ० ४६) भारतीय इतिहास में समन्वय की प्रधानता रही है और साहित्य और काव्य कला के क्षेत्र में भी इस प्रकार के समन्वय बराबर होते रहे हैं। रसवादी और अलंकारवादी दो महत्त्वपूर्ण अखाड़े खड़े हो गये और एक को छोटा और दूसरे को बड़ा कहने की परिपाटी चल पड़ी। बाद को रस को अलंकार (रसवत् अलंकार) बना लिया गया या दोनों को अभि-व्यंजनीय मान लिया गया। प्रसाद रस का संबंध 'आनन्द' से जोड़ते हैं और इस आनन्द रस को 'समरसता' मानते हैं। 'समरसता' का अर्थ है शांतरस। इसीसे वह शांतरस को सबसे बड़ा रस मानते हैं। 'आनंद' द्वारा कामायनी का पटाक्षेप इसी सिद्धांत के कारण है।

(५) अलंकार

'कामायनी' में अनेक अलकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। छायावादी काव्य का सबसे बड़ा बल—और कदाचित् सबसे बड़ी दुर्बलता—यही मूर्तिमत्ता (Imagery) की प्रचुरता है। अनेक स्थानों पर कवि इतना भावविभोर हो उठता है, कल्पना के इतने चित्र पर चित्र इकट्ठा करता चला जाता है कि पाठक उन्हें पूरी तरह पकड़ भी नहीं सकता। इससे शैली में चाहे चमत्कार जो आयें, विशृंखलता भी बढ़ जाती है। 'चिंता' पर विचार करता हुआ कवि लिखता है—

> ओ चिंता की पहली रेखा,
> अरी विश्व बन की व्याली;

ज्वालामुखी स्फोट के भीषण,
प्रथम कंप सी मतवाली!
हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा!
हरी-भरी सी दौड़धूप, ओ
जल-माया की चल रेखा!
इस ग्रह-कक्षा की हलचल री
गरल गरल की लघु लहरी;
जरा अमर जीवन की ओर न
कुछ सुनने वाली, बहरी!
अरी व्याधि की सूत्र-धारिणी!
अरी आधि, मधुमय अभिशाप!
हृदय गगन में धूमकेतु सी,
पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप।

× × ×

आह! घिरेगी हृदय लहलहे
खेतों पर करका-घन सी;
छिपी रहेगी अंतरतम में
सब के तू निगूढ़ धन सी।

इसमें चिंता को व्याली, ज्वालामुखी का स्फोट, अभाव की पुत्री, खल-लेखा, दौड़धूप, जलमाया इत्यादि न जाने कितने मूर्तिमान चित्रों में बाँधने का प्रयत्न हुआ है। परन्तु जहाँ कल्पना का इतना ऊहात्मक प्रयोग नहीं हुआ है, वहाँ काव्य का प्रकृत रूप अधिक सुन्दर बन पड़ा है कल्पना का अतिरेक छायावाद का सबसे बड़ा दोष है और अनेक स्थलों पर कामायनी-कार ने कल्पना का घटाटोप छा दिया है। परन्तु कल्पना के सार्थक प्रयोग ही कुछ अधिक हुए हैं। सत्य को मेधा के क्रीडा-पिंजर का सुआ बना देना और उसे तर्क-करों

से मुरझाई जाने वाली 'छुईमुई' करना सचमुच प्रतिभा का काम है। बुद्धि-विलास तो उसमें है ही।[1] जीवन और मृत्यु में सम्बन्ध स्थापित करता हुआ कवि कहता है (या मनु कहते हैं):

ओ जीवन की मरु मरीचिका,
कायरता के अलस विषाद !
अरे पुरातन अमृत ! अगतिमय
मोहमुग्ध -जर्जर अवसाद !
मौन ! नाश ! विध्वंस ! अँधेरा !
शून्य बना जो प्रगट अभाव,
वही सत्य है, अरी अमरते !
तुझको यहाँ कहाँ अब ठाँव।
मृत्यु, अरी चिर निद्रे ! तेरा
अंक हिमानी सा शीतल,
तू अनंत में लहर बनाती
काल-जलधि की सी हलचल।
महानृत्य का विषम सम, अरी
अखिल स्पंदनों की तू भाषा,
तेरी ही विभूति बनती है
सृष्टि सदा होकर अभिशाप।

---

१ और सत्य ! यह एक शब्द तू
कितना गहन हुआ है;
मेधा के क्रीड़ा-पंजर का
पाला हुआ सुआ है।
सब बातों में खोज तुम्हारी
रट सी लगी हुई है;
किन्तु स्पर्श के तर्क-करों से
बनता 'छुई मुई' है।

अंधकार के अट्टहास सी
मुखरित सतत चिरंतन सत्य,
छिपी सृष्टि के कण कण में तू,
यह सुन्दर रहस्य है नित्य।

इस वर्णन में उपमाओं के द्वारा मृत्यु के रूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। कहीं कहीं 'काल-जलधि की सी हलचल' जैसी सार्थक उपमाएँ मिल जाती हैं। किसी भी साहित्य में यह मूर्तिमत्ता महान् रहेगी। आगे की चार पंक्तियों में जीवन और मृत्यु का नील-घनमाला में सौदामिनी (बिजली) का खेल कहकर कवि ने अत्यंत मार्मिकता का परिचय दिया है :

जीवन तेरा क्षुद्र अंश है
व्यक्त नील घन-माला में,
सौदामिनी-संधि सा सुन्दर
क्षण भर रहा उजाला में।

परंतु केवल उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं से ही प्रसाद का काव्य महत्वपूर्ण नहीं है। अनेक अन्य सुन्दर अलंकारों का प्रयोग मिलेगा। व्यक्तिकरण (Personification) का एक उदाहरण देखिए—

पवन पी रहा था शब्दों को,
निर्जनता की उखड़ी साँस,
टकराती थी दीन प्रतिध्वनि
बनी हिमशिलाओं के पास।

प्रलय की अनंत निस्तब्धता के बीच मनु के मुखर चिंतन के शब्द किस तरह लगे, यह कवि दिखलाना चाहता है। पवन का 'शब्दों का पीना' (मौन, उत्सुक होकर जैसे उसकी बात सुनना), निर्जनता जैसे कोई वृद्धा स्त्री हो और उसकी साँस उखड़ गई हो (निर्जनता की साँय-साँय को चित्रित किया गया है) 'प्रतिध्वनि' का हिम-

शिखाओं से टकराना ऐसे चित्र हैं जिनमें पवन, निर्जनता और प्रतिध्वनि को सजीव चित्रित किया गया है। अमूर्त्त प्रकृति-तत्त्वों को इस प्रकार सजीव करने में जयशंकरप्रसाद विशेष रूप से सफल रहे हैं। मृत्यु को 'अंधकार का अट्टहास कहना' केवल उन्हीं जैसे प्रतिभा-वान कवि की सूझ हो सकती है। 'कामायनी' की पंक्ति-पंक्ति पर प्रसाद की मूर्तिमत्ता और उनके कल्पना-विलास के चित्र मिलेंगे। 'कामायनी' का सबसे बड़ा आकर्षण प्रसाद की कल्पना और मूर्तिमत्ता ही है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में प्रसादजी की शैली के सम्बन्ध में विशद रूप से विचार किया है। इसे हम क्रमागत रूप में इस प्रकार रख सकते हैं—(१) लाक्षणिक वैचित्र्य। आचार्य शुक्ल ने कहा है कि हिन्दी काव्य में अन्योक्ति-पद्धति का प्रचार हो रहा है, पर लाक्षणिकता का एक प्रकार से अभाव रहा। केवल कुछ रूढ़ लक्षणाएँ मुहावरों के रूप में कहीं-कहीं मिलती हैं। छायावाद में लक्षणा का व्यापक प्रयोग हुआ। 'लज्जा' के सारे सर्ग को ही लाक्षणिक वैचित्र्य के रूप में उपस्थित किया जा सकता है। कवि यौवनागम का वर्णन कर रहा है, परंतु उसे जीवन का मधुमय बसंत कहकर बसंत का चित्रण कर रहा है। इस प्रकार सांकेतिक रूप से कवि एक बड़ी बात कहने में सफल हुआ है—

मधुमय बसंत जीवन-बन के,
वह अंतरिक्ष की लहरों में;
कब आये थे तुम चुपके से
रजनी के पिछले पहरों में!
क्या तुम्हें देखकर आते यों
मतवाली कोयल बोली थी!
उस नीरवता में अलसाई
कलियों ने आँखें खोली थीं!

जब लीला से तुम सीख रहे
कोरक कोने में लुक रहना;
तब शिथिल सुरभि से धरणी में
बिछलन न हुई थी, सच कहना?
जब लिखते थे तुम सरस हँसी
अपनी फूलों के अंचल में;
अपना कलकंठ मिलाते थे
झरनों के कोमल कलकल में।

इस प्रकार के अनेक सुन्दर लाक्षणिक प्रयोग कामायनी में मिलेंगे।

(२) परन्तु प्रसाद की रचनाओं में शब्दों के लाक्षणिक वैचित्र्य की प्रवृत्ति उतनी नहीं, जितनी साम्य की दूरागत भावना। उनके उपकरण सामान्य अनुभूति के मेल में होते हैं। प्रसाद के काव्य में ऐसे उपकरणों (symbols) का विशेष महत्व है। प्रसाद की रचनाओं से उदाहरण देकर उन्होंने इस विशेषता को इस तरह समझाया है—

झंझा झकोर गर्जन है, बिजली है, नीरद माला,
पाकर इस शून्य हृदय को, सबने आ डेरा डाला।

(झंझा झकोर=क्षोभ, आकुलता। गर्जन=वेदना की तड़प। बिजली=चमक या टीस। नीरदमाला=अंधकार। शून्य शब्द विशेषण के अतिरिक्त आकाश-वाचक भी है, जिससे उक्ति में बहुत सुन्दर समन्वय आ जाता है।)

पतझड़ था, झाड़ खड़े थे सूखे से फुलवारी में,
किसलय दल कुसुम बिछाकर आए तुम इस क्यारी में।

(पतझड़=उदासी। किसलयदल कुसुम=बसंत=सरसता और प्रफुल्लता काँटों ने भी पहरा मोती। कटीले पौधों=पीड़ा पहुँचाने वाले कठोर-हृदय मनुष्यों। पहना मोती=हिमबिन्दु धारण किया=अश्रुपूर्ण हुए।)

(३) प्रसाद अपने अप्रस्तुतों को एकदेशीय, सूक्ष्म और धुँधले पर मर्मव्यंजक साम्य का धुँधला-सा आधार लेकर खड़ा करते हैं।

उठ उठ री लघु लघु लोल लहर।
करुणा की नव अँगड़ाई-सी, मलयानिल की परछाईं-सी,
इस सूखे तट पर छहर छहर।

(लहर=सरस कोमल भाव। सूखा तट=शुष्क जीवन। अप्रस्तुत या उपमान भी लाक्षणिक हैं।)

(४) गीतों-प्रगीतों में अन्विति कम दिखाई देती है। जहाँ पर अन्विति है, वहाँ समूची रचना अन्योक्ति-पद्धति पर की जाती है। इस प्रकार साम्य की भावना का ही प्राचुर्य हम सर्वत्र पाते हैं। यह साम्य-भावना हमारे हृदय का प्रसार करने वाली, शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के गूढ़ सन्बन्ध की धारणा वनानेवाली, अत्यन्त अपेक्षित मनोभूमि है, इसमें संदेह नहीं पर यह सच्चा मार्मिक प्रभाव वहीं उत्पन्न करती है जहाँ यह प्राकृतिक वस्तु या व्यापार से प्राप्त अपने अनंत रूपों और व्यापारों के द्वारा अनेक बातों की गूढ़ और अगूढ़ व्यंजना करती है। इस व्यंजना को न परख कर या न ग्रहणकर जो साम्यविधान होगा, वह मनमाना आरोप होगा। इस अनन्त विश्व-महाकाव्य की व्यंजनाओं की परख के साथ जो साम्यविधान होता है, वही मार्मिक और उद्बोधक होता है—

मेरा अनुराग फैलने दो नभ के अभिनव कलरव में
जग के सूनेपन के तम में बन किरन कभी आ जाना

अखिल की लघुता आई बन, समय का सुन्दर वातायन
देखने को अदृष्ट नर्तन!

जल उठा स्नेह दीपक सा, नवनीत हृदय था मेरा।
अब शेष धूमरेखा से, चित्रित कर रहा सवेरा॥

मनमाने आरोप जिनका विधान प्रकृति के संकेत पर नहीं होता, हृदय के मर्मस्थल को स्पष्ट नहीं करते, केवल वैचित्र्य का कुतूहल मात्र उत्पन्न करके रह जाते हैं। छायावाद की कविता पर कल्पनावाद, फलावाद, अभिव्यंजनावाद आदि का भी प्रभाव ज्ञात या अज्ञात रूप में पड़ता है। इससे बहुत सा अप्रस्तुत विधान मनमाने आरोप के रूप के सामने आता है।

(५) प्रकृति के वस्तु-व्यापारों पर मानुषी वृत्तियों का आरोप। कहीं कहीं वे आरोप वस्तु-व्यापारों की प्रकृत व्यंजना से बहुत दूर जा पड़े हैं, जैसे

लहरों में प्यास भरी है, हैं भँवर पात्र भी खाली।
मानस का सब रस पीकर, लुढ़का दी तुमने प्याली॥

प्रकृति के नाना रूपों के सौन्दर्य की भावना सदैव स्त्री-सौंदर्य का आरोप करके करना उक्त भावना की संकीर्णता सूचित करता है। उषा-सुन्दरी के कपोलों की ललाई, रजनी के रत्नजड़ित केश-कलाप, दीर्घ निश्वास और अश्रुबिंदु तो रूढ़ हो गये हैं; किरण, लहर, चंद्रिका, छाया तितली सब अप्सरायें परियाँ बन कर ही सामने आने पाती हैं। इसी तरह प्रकृति के नाना व्यापार भी चुम्बन, आलिंगन, मधुग्रहण, मधुदान, कामिनी की क्रीड़ा इत्यादि में अधिकतर परिणत दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए 'कामायनी' में प्रसाद का रजनी का चित्रण—

विश्व कमल की मृदुल मधुकरी
रजनी तू किस कोनों से
आती चूम चूम चल जाती
पढ़ी हुई किस टोने से।
किस दिगंत रेखा में इतनी
संचित कर सिसकी सी साँस,
यों समीर मिस हाँफ रही सी

चली जा रही किसके पास।
विकल खिलखिलाती है क्यों तू?
इतनी हँसी न व्यर्थ बिखेर;
तुहिन कणों, फेनिल लहरों में,
मच जायेगा फिर अंधेर।

× ×

पगली हाँ सम्हाल ले कैसे
छूट पड़ा तेरा अंचल;
देख, बिखरती है मणिराजी,
अरी उठा बेसुध चंचल।
फटा हुआ था नील वसन क्या
ओ यौवन की मतवाली!
देख अकिंचन जगत लूटता
तेरी छबि, भोली भाली।

(६) 'प्रसाद' जी का ध्यान शरीर-विकारों पर विशेष जमता था। इसी से उन्होंने 'चाँप-चाँप कर दुख दो' से ललाई दौड़ने की कल्पना पाठकों के ऊपर छोड़ दी है। 'कामायनी में उन्होंने मले हुए कान में भी कामिनी के कपोलों पर की (लज्जा की लाली) दिखाई है।

(७) अभिव्यंजना की पद्धति या काव्य-शैली पर ही प्रधान लक्ष्य रहने से छायावाद के भीतर उसका बहुत ही रमणीक विकास हुआ है। साम्य-भावना और लक्षणा-शक्ति के बल पर काव्योपयुक्त चित्रमयी भाषा की ओर सामान्यतः झुकाव हुआ। साम्य पहले उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक—ऐसे अलंकारों के बड़े-बड़े साँचों के भीतर ही फैला कर दिखाया जाता था। वह अब प्रायः थोड़े में या तो लाक्षणिक प्रयोगों के द्वारा झलकाया गया अथवा कुछ प्रच्छन्न रूपकों में प्रतीयमान् रहा। इसी प्रकार किसी तथ्य या पूरे प्रसंग के लिए

दृष्टांत आर्थांतरन्यास आदि से सहारा न लेकर अब अन्योक्ति-प्रद्धति ही अधिक चलती है। यह बहुत ही परिष्कृत पद्धति है। पर यह न समझना चाहिये कि उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग नहीं होता है, बराबर होता है और बहुत होता है। उपमा में धर्म बराबर लुप्त रहता है। प्रतिवस्तूपमा, हेतुत्प्रेक्षा, विरोध, श्लेष, एकावली इत्यादि अलंकार भी कहीं-कहीं पाये जाते हैं।

(८) पदलालित्य। अपनी मधुमयी प्रतिभा और जागरूक भावुकता के कारण एवं संस्कृत और बंगला की कोमल कांत-पदावली के प्रभाव से प्रसाद ने पदलालित्य पर विशेष ध्यान दिया और अनेक प्रकार के नादसौन्दर्य (शब्दालंकार) के दर्शन हमें उनके काव्य में होते हैं।

(९) 'कामायनी' के संबंध में लिखते हुए तो कहीं-कहीं आचार्य शुक्ल बड़े भावुक हो जाते हैं। 'यदि हम इस विशद काव्य की अंतर्योजना पर न ध्यान दें, समष्टि रूप में कोई समन्वित प्रभाव न ढूँढे, श्रद्धा, काम, लज्जा, इडा इत्यादि को अलग-अलग लें तो हमारे सामने बड़ी ही रमणीय चित्रमयी कल्पना, अभिव्यंजना की अत्यन्त मार्मिक मनोरम पद्धति आती है। इन वृत्तियों की आभ्यन्तर प्रेरणाओं और वाह्य प्रवृत्तियों को बड़ी मार्मिकता से परख कर इनके स्वरूपों की नराकार उद्भावना की गई है। स्थान-स्थान पर प्रकृति की मधुर भव्य और आकर्षक विभूतियों की योजना का तो कहना ही क्या है! प्रकृति के ध्वंसकारी भीषण रूप-वेग का भी अत्यन्त व्यापक परिधि के भीतर चित्रण हुआ है। इस प्रकार प्रसाद प्रबंधक्षेत्र में भी छायावाद की चित्रप्रधान और लाक्षणिक शैली की सफलता की आशा बँधा गये हैं।'

ऊपर के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि कल्पना मूर्तिमत्ता और आनन्दविधान की दृष्टि से प्रसाद का काव्य अत्यन्त पुष्ट है। कामायनी तो इन विषयों में प्रसाद के काव्य में शीर्ष स्थान प्राप्त ही करती है

नवीन प्रतीक-विधानों, नवीन अंग्रेजी ढंग के अलंकारों और नव अभिव्यञ्जना शैलियों का जितना प्रभावशाली और सार्थक प्रयोग इस काव्य में मिलेगा, उतना अन्य स्थानों में नहीं मिल सकेगा। आदि पुरुष (मनु) आद्या (श्रद्धा और इड़ा) और उनके जीवन की अनेक परिस्थितियों को कोमल कल्पना और सुन्दर भावों की मणिमाला में गूँथ कर प्रसाद ने हिन्दी भारती को जो निधि दी है, उसका मूल्य बढ़ता ही रहेगा। प्राचीन प्रतीक-विधान, विषय, अभिव्यंजना-शैली और साहित्य प्ररिपाटी से एकदम हटकर एक नवीन साहित्य की रूपरेखा प्रसाद ने तैयार की और 'कामायनी' के रूप में हम साहित्य का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हमारे सामने रखा। प्रसाद की भावाभिव्यंञ्जना की कई विशेषताएँ हैं—(१) उसकी सरसता, (२) उसकी सांकेतिकता, (३) उसकी ऐश्वर्यशाली मूर्तिमत्ता। इन्हीं तीनों प्रमुख विशेषताओं ने प्रसाद का 'प्रसादत्व' स्थापित किया है। उनकी रचना-शैली इतनी अपनी है कि सारे आधुनिक काव्य में उनका एक छंद भी कहीं नहीं छिप सकता। जहाँ प्रसाद अमूर्त्त भावों और उत्तेजनाओं का चित्रण करते हैं, वहाँ वे संसार के किसी भो कवि से टक्कर ले सकते हैं। मनु के आश्रम में चंद्रिका का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

धवल मनोहर चंद्रबिंब से
अंकित सुन्दर स्वच्छ निशीथ
जिसमें शीतल पवन गा रहा
पुलकित हो पावन उद्‌गीथ

इसमें 'उद्‌गीथ' शब्द से सामवेद-कालीन सभ्यता का चित्र उपस्थित हो जाता है। ऐश्वर्यशाली मूर्तिमत्ता और कल्पना-विलास के लिए तो प्रसाद प्रसिद्ध ही हैं। कहीं-कहीं यह कल्पना-विलास इतना बढ़ गया कि काव्य की सहज गति ही रुद्ध हो गई। न जाने फिर भो कितने ऐश्वर्य-चित्र प्रसाद की प्रतिभा ने 'कामायनी' में गूँथ दिये हैं।

(६) वर्णन

'कामायनी' मुख्यतः वर्णन-प्रधान काव्य है। अनेक सुन्दर वर्णनों से यह काव्य भरा पड़ा है। आरंभ में ही कवि प्रलयसिंधु के तट पर बैठे हुए मनु का वर्णन करता है—

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष, भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रबल प्रवाह !

नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था, एक सघन;
एक तत्त्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन।

दूर दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान,
नीरवता सी शिला-चरण से
टकराता फिरता पवमान।

तरुण तपस्वी-सा वह बैठा
साधन करता सुर-श्मशान;
नीचे प्रलय-सिंधु लहरों का
होता था सकरुण अवसान

'मनु' के पौरुष का वर्णन पढ़िये—

अवयव की दृढ़ मांस मेशियाँ,
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार;
स्फीत शिरायें, स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार।

चिंताकातर वदन हो रहा
पौरुष जिसमें ओतप्रोत;
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्रोत।

देव-सृष्टि के सौन्दर्य और प्रलय की भीषणता का एक साथ वर्णन देखिये—

रत्नसौध के वातायन, जिनमें
आता मधु-मदिर समीर;
टकराती होगी अब उनमें
तिमिंगलों की भीड़ अधीर।
देव-कामिनी के नयनों से
जहाँ नील नलिनों की सृष्टि
होती थी, अब वहाँ हो रही
प्रलयकारिणी भीषण वृष्टि।
वे अम्लान कुसुम सुरभित,
मणि-रचित मनोहर मालायें,
बनी शृङ्खला, जकड़ीं जिनमें
विलासिनी सुर-बालायें

सोती हुई श्रद्धा का किस संयम और किस कौशल से कवि वर्णन करता है—

खुले मसृण भुज-मूलों से
वह आमंत्रण था मिलता;
उन्नत वक्षों में आलिंगन
सुख लहरों सा तिरता।
नीचा हो उठता जो धीमे
धीमे निश्वासों में;

जीवन का ज्यों ज्वार उठ रहा
हिमकर के हासों में।
जागृत था सौन्दर्य यद्यपि वह
सोती थी सुकुमारी;
रूपचंद्रिका में उज्ज्वल थी
आज निशा-सी नारी।
वे मांसल परमाणु किरण से
विद्युत थे बिखराते;
अलकों की डोरी में जीवन
कण - कण उलझे जाते।
विगत विचारों के श्रमसीकर
बने हुए थे मोती;
मुख - मंडल पर करुण कल्पना
उनको रही पिरोती।
छूते थे मनु और कंटकित
होती थी वह बेली;
स्वस्थ व्यथा की लहरों सी
जो अंग-लता थी फैली

मनु श्रद्धा (कामायनी) को छोड़ कर चले गये हैं। श्रद्धा अकेली रह गई है। इस विरहिणी की व्यथा के माध्यम से प्रसाद हिमगिरि-प्रान्तर की संध्या का वर्णन कर रहे हैं—

बन-बालाओं के निकुंज सब
भरे वेणु के मधु स्वर से,
लौट चुके थे आने वाले
सुन पुकार अपने घर से;
किन्तु न आया वह परदेसी
युग छिप गया प्रतीक्षा में,

रजनी की भीगी पलकों से
तुहिन विंदु कण-कण बरसे।
मानस का स्मृति शतदल खिलता,
झरते विंदु मरंद घने,
मोती कठिन पारदर्शी थे
इनमें कितने चित्र बने!
आँसू सरल तरल विद्युतकण,
नयनालोक विरह तम में,
प्राण-पथिक यह संबल लेकर
लगा कल्पना - जग रचने।
अरुण जलज के शोण कोण थे
नव तुषार के विन्दु भरे,
मुकुर चूर्ण बन रहे प्रतिच्छवि
कितनी साथ लिये विखरे!
वह अनुराग हँसी दुलार की
पंक्ति चली सोने तम में,
वर्षा विरह कुहू में जलते
स्मृति के जुगनू डरे-डरे।
सूने गिरिपथ में गुंजारित
शृङ्गनाद की ध्वनि चलती,
आकांक्षा-लहरी दुखतटिनी
पुलिन अंक में थी ढलती;
जले दीप नभ में, अभिलाषा
शलभ उड़े, उस ओर चले,
भरा रह गया आँखों में जल
बुझी न वह ज्वाला जलती।

मनु इड़ा पर अधिकार जमाना चाहते हैं। सारस्वत प्रदेश में आये

हुए उन्हें बहुत काल बीत गया, परन्तु इड़ा उनकी पकड़ में नहीं आयी। अंत में वह बल के प्रयोग के लिए तैयार हो गये। उस समय सारी प्रकृति क्षुब्ध हो उठी। सहसा विद्रोही प्रजा का हुहुंकार सुन पड़ा। लज्जा और क्रोध से भरी इडा एकांत भवन को छोड़ कर भाग गई।

आलिंगन फिर भय का क्रन्दन
वसुधा जैसे काँप उठी।
वह अतिचारी, दुर्बल नारी
परित्राण-पथ नाप उठी!
अंतरिक्ष में हुआ रुद्र-हुंकार
भयानक हलचल थी;
अरे आत्मजा प्रजा! पाप की परिभाषा
बन शाप उठी।

उधर गगन में क्षुब्ध हुई सब
देव-शक्तियाँ क्रोध भरी,
रुद्र नयन खुल गया अचानक,
व्याकुल काँप रही नगरी;
अतिचारी था स्वयं प्रजापति,
देव अभी शिव बने रहें।
नहीं, इसीसे चढ़ी शिंजिनी
अग-जग पर प्रतिशोध भरी!

प्रकृति त्रस्त थी, भूतनाथ ने
नृत्य विकम्पित पद अपना,
उधर उठाया, भूत सृष्टि सब
होने जाती थी सपना।
आश्रय पाने को सब व्याकुल,
स्वयं कलुष में मनु संदिग्ध,

फिर कुछ होगा यही समझ कर
वसुधा का थर-थर कँपना !

काँप रहे थे प्रलयमयी क्रीड़ा से
सब आशंकित जंतु,
अपनी-अपनी पड़ी सभी को,
छिन्न स्नेह का कोमल तंतु;
आज कहाँ वह शासन था जो
रक्षा का था भार लिये,
इड़ा क्रोध-लज्जा से भर कर
बाहर निकल चली थी किन्तु।

'संघर्ष' शीर्षक सर्ग में मनु और सारस्वत प्रदेश की प्रजा का भीषण युद्ध भी कवि ने अत्यंत कुशलता से वर्णित किया है—

छूट रहे नाराच धनुष से तीक्ष्ण नुकीले,
टूट रहे नभ धूमकेतु अति नीले पीले !
अंधड़ था बढ़ रहा, प्रजा-दल सा झुँझलाता,
रण वर्षा में शस्त्रों सा बिजली चमकाता।
किन्तु क्रूर मनु वारण करते थे बाणों को,
बढ़े कुचलते हुए खड्ग से जन प्राणों को।
तांडव में थी तीव्र प्रगति, परमाणु विकल थे
नियति विकर्षणमयी, त्रास से सब व्याकुल थे।
मनु फिर रहे अलात-चक्र से उस घन-तम में,
वह रक्तिम उन्माद नाचता कर निर्मम में।
उठा तुमुल रणनाद, भयानक हुई अवस्था,
बढ़ा विपक्ष समूह मौन पददलित व्यवस्था।

आहत पीछे हटे, स्तंभ से टिक कर मनु ने,
श्वास लिया, टंकार किया दुर्लक्ष्यी धनु ने।

× ×

धूमकेतु सा चला रुद्र नाराच भयंकर,
लिये पूँछ में ज्वाला अपनी अति प्रलयंकर।
अंतरिक्ष में महाशक्ति हुंकार कर उठी।
सब शस्त्रों की धारें भीषण वेग भर उठीं।
और गिरीं मनु पर, मुमूर्ष वे गिरे वहीं पर,
रक्तनदी की बाढ़ फैलती थी उस भू पर।

'निर्वेद' में सारस्वत नगर के उजड़े वैभव का वर्णन इस प्रकार है—

वह सारस्वत नगर पड़ा था
क्षुब्ध मलिन कुछ मौन बना
जिसके ऊपर विगत कर्म का
विष विषाद आवरण तना।
उल्काधारी प्रहरी-से ग्रह
तारा नभ में टहल रहे,
वसुधा पर यह होता क्या है
अणु अणु क्यों हैं मचल रहे?
जीवन में जागरण सत्य है
या सुषुप्ति ही सीमा है,
आती है रह-रह पुकार सी
'यह भव-रजनी भीमा है।'
निशिचारी भीषण विचार के
पंख भर रहे सर्राटे,
सरस्वती थी चली जा रही,
खींच रही सी सन्नाटे।

अभी घायलों की सिसकी में
जाग रही थी मर्म व्यथा,
पुरलक्ष्मी खग-रव के मिस कुछ
कह उठती थी करुण कथा।
कुछ प्रकाश धूमिल सा उसके
दीपों से था निकल रहा,
पवन चल रहा था रुक-रुक कर
खिन्न भरा अवसाद रहा

भयमय मौन निरीक्षक साथी,
सजग सतत चुपचाप खड़ा,
अंधकार का नील आवरण
दृश्य जगत से रहा बड़ा।
मंडप के सोपान पड़े थे
सूने, कोई अन्य नहीं,
स्वयं इड़ा उस पर बैठी थी
अग्नि-शिखा थी धधक रही।

शून्य राजचिन्हों से मंदिर
बस समाधि सा रहा खड़ा,
क्योंकि वहीं घायल शरीर वह
मनु का तो था रहा पड़ा।
इड़ा ग्लानि से भरी हुई बस
सोच रही बीती बातें,
घृणा और ममता में ऐसी
बीत चुकीं कितनी रातें!

'दर्शन' सर्ग में हिमालय की तपःपूत प्रकृति का वर्णन करता हुआ कवि भावना से विभोर हो उठता है—

निस्तब्ध गगन था दिशा शांत,
वह था असीम का चित्र कान्त,
कुछ शून्य विंदु उर के ऊपर,
व्यथिता रजनी के श्रमसीकर;
झलके कब से पर पड़े न झर,
गंभीर मलिन छाया भू पर;

सरित-तट तरु का क्षितिज प्रांत,
केवल बिखेरता दीन ध्वांत।
शत शत तारा मंडित अनन्त,
कुसुमों का स्तवक खिला वसन्त,
हँसता ऊपर का विश्व मधुर,
हलके प्रकाश से पूरित उर;
बहती माया सरिता ऊपर,
उठती किरणों की लोल लहर;

निचले स्तर पर छाया दुरंत,
आती चुपके, जाती तुरंत।
सरिता का वह एकांत कूल,
था पवन हिंडोले रहा झूल;
धीरे धीरे लहरों का दल,
तट से टकरा होता ओझल;
छपछप का होता शब्द विरल,
थरथर कँप रहती दीप्ति तरल;

संसृति अपने में रही भूल
वह गंधविधुर अम्लान फूल।

'आनंद' सर्ग एक प्रकार से सुन्दर वर्णनों से भरा पड़ा है। वर्णन की

इतनी क्षमता आधुनिक हिन्दी काव्य में किसी दूसरे स्थान पर मिलना कठिन है। नीचे की पंक्तियों का चित्र ऋग्वेद-युग को पाठक की सम-वेदना के आगे जीवित कर देता है—

> चलता था धीरे धीरे वह एक यात्रियों का दल;
> सरिता के रम्य पुलिन में गिरिपथ ले निज सम्बल।
> था सोमलता से आवृत वृष धवल धर्म का प्रतिनिधि,
> घंटा बजता तालों में उसकी थी मंथर गतिविधि।
> वृष रज्जु वाम कर में था दक्षिण त्रिशूल से शोभित;
> मानव था साथ उसी के मुख पर था तेज अपरिमित।
> केहरि-किशोर से अभिनव अवयव प्रस्फुटित हुए थे;
> यौवन गभीर हुआ था, जिसमें कुछ भाव नए थे।
> चल रही इड़ा भी वृष के दूसरे पार्श्व में नीरव;
> गैरिक वसना संध्या सी जिसके चुप थे सब कलरव।

इस प्रकार के यथातथ्य परन्तु साहित्यरस से पूर्ण वर्णन साहित्य का गौरव है। कामायनी वर्णन-प्रधान काव्य नहीं है, वह मनःविश्लेषण प्रधान रूपक है। परन्तु जो भी वर्णन उसमें हैं, वे अत्यंत उच्च कोटि के हैं और उनमें प्रसाद की ऐतिहासिक प्रतिभा, उनकी ऐश्वर्य-प्रधान चित्रमयी मूर्तिमत्ता और उनकी कला का उत्कृष्ट प्रभाव मिलता है। ये वर्णन कथा-रस को और भी चमत्कारी बना देते हैं।

(७) विचार-धारा

'कामायनी' की कथावस्तु के पीछे जिस दार्शनिक चिंतन की साधना छिपी है, उसके सम्बन्ध में हम पहले भी विचार कर चुके हैं। यहाँ हम प्रसाद की सारी विचारधारा को विस्तृत रूप से सामने रखेंगे।

प्रसाद ने सर्गों के नाम अत्यन्त सार्थक रखे हैं—१ चिन्ता, २ आशा, ३ श्रद्धा, ४ काम, ५ वासना, ६ लज्जा, ७ कर्म, ८ ईर्ष्या, ९ इड़ा,

१० स्वप्न, ११ संघर्ष, १२ निर्वेद, १३ दर्शन, १४ रहस्य, १५ आनन्द। कामायनी की कथा का आरंभ मनु की चिन्ता से होता है और पर्यवसान अनंत आनन्द में। अनेक मानसिक संघर्षों के बीच में से होकर मनु मनुष्य-जीवन के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। यह आनन्द उस उच्छृङ्खल आनन्द की छाया मात्र से भिन्न है जिसका आधार देवसंस्कृति थी। 'चिन्ता' सर्ग में इस उच्छृङ्खलित आनन्द का प्रसाद ने पहले ही प्रतिवाद कर दिया है। उसे उन्होंने 'वासना की उपासना' कहा है जिसका आधार है दंभ। दंभ के आधार पर नई संस्कृति (मानवता) की नींव नहीं डाली जा सकती थी। अतः मनु को एक जीवनव्यापी संघर्ष के बाद नई भूमि डालनी पड़ी। तप, श्रद्धा (संयोजित जीवन), कर्म और इड़ा (बुद्धिवाद) अलग-अलग जीवन के चार मार्ग हैं। देवों के आत्मवाद-प्रधान आनन्द की उच्छृङ्खल उपासना को ग्लानिकर समझ मनु एक के बाद दूसरा मार्ग पकड़ते हैं परन्तु उन्हें शांति नहीं मिलाती। वह तप करते हैं—

तप में निरत हुए मनु, नियमित—
कर्म लगे अपना करने।
विश्व रंग में कर्मजाल के—
सूत्र लगे घन हो घिरने।
उस एकांत नियति-शासन में—
चले विवश धीरे धीरे;
एक शांत स्पन्दन लहरों का—
होता ज्यों सागर तीरे
विजन जगत की तंद्रा में तब
चलता था सूना सपना;
ग्रह-पथ के आलोक वृत्त से
काल-जाल तनता अपना।

पहर दिवस रजनी आती थी
चल जाती संदेश विहीन;
एक विरागपूर्ण संसृति में
ज्यों निष्फल आरंभ नवीन।

परन्तु प्रकृति के एक ही उल्लासपूर्ण इंगित से तप और संयम का यह बाँध टूट जाता है—

तप से संयम का संचित बल
तृषित और व्याकुल था आज;
अट्टहास कर उठा रिक्त का
वह अधीरतम सूना राज

वह आशा के छलावे में आ जाते हैं। काम का उदय होता है। वासना की जीत होती है।

तब श्रद्धा के साथ मनु संयोजित जीवन बिताना चाहते हैं, परंतु देव-जीवन की साहसिकता उनका पीछा नहीं छोड़ती। परन्तु केवल काम (इंद्रिय सुख) को पूरा संतोष नहीं दे सका है। इसी से श्रद्धा के जीवनपथ पर भी चलते हुए मनु कर्मक्षेत्र में उतरते हैं। परन्तु कर्मवाद और श्रद्धा द्वारा मर्यादित जीवन में विरोध है। भीतर-भीतर यह विरोध इकट्ठा होता रहता है। असुर पुरोहित किलात और आकुलि कर्मवाद को और प्रश्रय देते हैं। फलतः मनु श्रद्धा से दूर हटते जाते हैं। कर्मवाद के पोषक मनु कहते हैं—

कर्म-यज्ञ से जीवन के
सपनों का स्वर्ग मिलेगा;
इसी विपिन में मानस की
आशा का कुसुम खिलेगा

इस कर्मवाद की परिणति भोगवाद में है। मनु श्रद्धा से कहते हैं—

आकर्षण से भरा विश्व यह
केवल भोग्य हमारा;
जीवन के दोनों कूलों में
बहे वासना धारा।

कर्म का अर्थ है अनिवरत श्रम। श्रम की आकुलता, श्रम की व्यस्तता को भूलने के लिए ही मानव भोगवाद की शरण लेता है—

श्रम की, इस अभाव की जगती
उसकी सब आकुलता
जिस क्षण भूल सकें हम अपनी
यह भीषण चेतनता,
वही स्वर्ग की बन अनन्तता
मुस्क्याता रहता है;
दो बूँदों में जीवन का रस
लो बरबस बहता है।

भोगवाद की कितनी सुन्दर व्याख्या प्रसाद की इन कुछ पंक्तियों मिलती है—

तुच्छ नहीं है अपना सुख भी
श्रद्धे! वह भी कुछ है
दो दिन के इस जीवन का तो
वही चरम सब कुछ है
इन्द्रिय की अभिलाषा जितनी
सतत सफलता पावे;

जहाँ हृदय की तृप्ति विलासिनि
मधुर-मधुर कुछ गावे;
रोमहर्ष हो उस ज्योत्स्ना में
यह मुस्कान खिले तो,
आशाओं पर श्वास निछावर
होकर गले मिले तो
विश्व-माधुरी जिसके सम्मुख
मुकुट बनी रहती हो;
वह अपना सुख-स्वर्ग नहीं है!
यह तुम क्या कहती हो?

परन्तु श्रद्धा इस भोगपरक कर्मवाद को कोई सुन्दर जीवन-लक्ष्य नहीं मानती। कर्मवाद बुरा नहीं है, परन्तु कर्म स्व-सुख के लिए नहीं हों, पर-सेवा के लिये हों। वह कहती है—

अपने में सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा?
यह एकांत स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा!
औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ;
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ।
रचना-मूलक सृष्टि यज्ञ यह
यज्ञ-पुरुष का जो है
संसृति सेवा-भाग हमारा
उसे विकसने को है!

भोगवाद का सुख 'काल्पनिक विजय' के कारण है, वह 'छल-

वाणी की प्रवंचना है जो मानव को अपना जीवन-उद्देश्य भुला देती है। मनु ने श्रद्धा के सेवा-मंत्र को स्वीकार नहीं किया, वे आत्मस्थित होकर थोथे भोगवाद में डूब गये।

इस कर्मवाद और भोगवाद में तृप्ति कहाँ! मनु माया और विलास में फँस गये। उन्होंने हृदय का स्वाधिकार खो दिया। वह चाहने लगे—'कुछ और, कुछ और'। भयंकर अतृप्ति से उनका हृदय जल उठा :

मनु को अब मृगया छोड़ नहीं
रह गया और था अधिक काम;
लग गया रक्त था उस मुख में
हिंसा-सुख लाली के ललाम।
हिंसा ही नहीं और भी कुछ
वह खोज रहा था मन अधीर।
अपने प्रभुत्व की सुख सीमा
जो बढ़ती हो अवसाद चीर।

इसी अतृप्ति की प्रेरणा से वह 'श्रद्धा की भावी संतति की सुख-चिंता से ईर्ष्या करने लगता है। अंत में वह सुख की खोज में घर छोड़ कर निकल जाता है। श्रद्धा संतति के सुख-सपनों में भूलती इकेली रह जाती है। श्रद्धा अब मनु के लिए बंधन-मात्र थी। इसी से चलते हुए मनु कहता है—

तुम अपने सुख से सुखी रहो
मुझको दुख पाने दो स्वतंत्र
'मन की परवशता महादुःख'
मैं यहाँ जपूँगा महामंत्र।

श्रद्धा से अलग होकर मनु सुख की खोज में मारे-मारे फिरते हैं। उनमें एक बार फिर भयंकर आत्मचिन्तन का जन्म होता है। 'इड़ा'

सर्ग में प्रसाद ने इस चिन्तन को बड़े ओजस्वी शब्दों में प्रकाशित किया है। जीवन की रहस्यमयता का इससे सुन्दर प्रकाशन किसी भी साहित्य में नहीं मिलेगा—

किस गहन गुहा से अति अधीर
झंझा-प्रवाह सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महासमीर
ले साथ विकल परिमाणु-पुंज नभ, अनिल, अनल क्षिति और नीर
भयभीत सभी को भय देता भय की उपासना में विलीन
प्राणी कटुता को बाँट रहा जगती को करता अधिक दीन
निर्माण और प्रतिपद विनाश में दिखलाता अपनी क्षमता
संघर्ष कर रहा सा सब से, सब से विराग, सब पर ममता
अस्तित्व चिरंतन धनु से कब यह छूट पड़ा है विषमय तीर
किस लक्ष्य-भेद को शून्य चीर

जीवन पर चिन्तन करते हुए मनु के सामने कई चित्र जग जाते हैं। जीवन की एक साधना शैल-शृङ्गों जैसी है जो अपने में सुखी, 'स्तिमित नयन गत शोक क्रोध स्थिर मुक्त' हैं। ऐसी स्थितप्रज्ञता मनु को नहीं चाहिये। मनु तो कर्म-प्रधान जीवन जीना चाहते हैं जिसका प्रतीक है अबाध गति मरुत। परन्तु इस अबाध गति बहने में वह क्या सुख बटोर सका ? ऐसा तो नहीं—

इस दुखमय जीवन का प्रकाश
नभ नील लता की डालों में उलझा अपने सुख से हताश
कलियाँ जिनको मैं समझ रहा वे काँटे बिखरे आस-पास
कितना बीहड़ पथ चला और पड़ रहा कहीं थक कर नितांत
उन्मुक्त शिखर हँसते मुझ पर रोता मैं निर्वासित अशांत
इस नियति नटी के अति भीषण अभिनय की छाया नाच रही
खोखली शून्यता में प्रतिपद असफलता अधिक कुलांच रही
पावस-रजनी में जुगनूगण को दौड़ पकड़ता मैं निराश
उन ज्योतिकणों का कर विनाश

इस सुख की खोज का अर्थ है अवसाद, निराशा, आत्म-प्रताड़ना। मनु को इसी अवसाद, निराशा और आत्म-प्रताड़ना का परिचय मिलता है। उसे सुरों-असुरों के जीवन-दर्शन की याद आ जाती है। सुर कहते थे—

"मैं स्वयं सतत आराध्य आत्ममंगल उपासना में विभोर
उल्लास-शील हैं शक्ति केंद्र, किसकी खोजूँ फिर शरण और
आनंद उच्छलित शक्तिस्रोत जीवन-विकास वैचित्र्य भरा
अपना नव-नव निर्माण किये रखता यह विश्व सदैव हरा"

असुर देह को पूजते थे। वे क्रांति नहीं, सुधार के उपासक थे। वे नियमों में बँधे थे। नियम ही उनके लिए मुक्ति थे। परन्तु दोनों श्रद्धा-(विश्वास) हीन थे। अतः देवासुर-संग्राम हुआ। दोनों जीवन-दर्शन अपूर्ण सिद्ध हुए।

मनु इसी तर्क-वितर्क में लगे थे कि अन्तस् ने उनके प्रश्नों का उत्तर दे दिया। आधुनिक कर्म-प्रधान वितृष्णामयी सभ्यता का सारा छल मनु पर प्रगट हो गया। 'कामायनी' की आधुनिक पृष्ठभूमि समझने के लिए ये छंद अनिवार्य हैं—

"यह अभिनव मानव प्रजा-सृष्टि
द्वयता में लगी निरंतर ही वर्णों की करती रहे वृष्टि
अनजान समस्यायें गढ़ती रचती हो अपनी ही विनिष्टि
कोलाहल कलह अनंत चले, एकता नष्ट हो, बढ़े भेद
अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दुखद खेद
हृदयों का हो आवरण सदा अपने वक्षस्थल की जड़ता
पहचान सकेंगे नहीं परस्पर चले विश्व गिरता पड़ता
सब कुछ भी हो यदि पास भरा पर दूर रहेगी सदा तुष्टि
दुख देगी यहसं ! चत दृष्टि

अनवरत उठे कितनी उमंग
चुम्बित हो आँसू जलधर से अभिलाषाओं के शैलशृंग
जीवन - नद हाहाकार भरा, हो उठती पीड़ा की तरंग
लालसा भरे यौवन के दिन पतझड़ से सूखे जायँ बीत
संदेह नये उत्पन्न रहें उनसे संतप्त सदा सभीत
फैलेगा स्वजनों का विरोध बन कर तम वाली श्याम अमा
दारिद्र्य दलित बिलखाती हो यह शस्य श्यामला प्रकृति रमा
दुख - नीरद में बन इंद्रधनुष बदले नर कितने नये रंग
बन तृष्णा ज्वाला का पतंग

वह प्रेम न रह जाये पुनीत
अपने स्वार्थों से आवृत हो मंगल रहस्य सकुचे सभीत
सारी संसृति हो विरह भरी, गाते ही बीते करुण गीत
आकांक्षा जलनिधि की सीमा हो क्षितिज निराशा सदा रक्त
तुम राग विराग करो सबसे अपने को कर शतशः विभक्त
मस्तिष्क हृदय के हो विरुद्ध दोनों में हो सद्भाव नहीं
वह चलने को जब कहे कहीं तब हृदय विकल चल जाय कहीं
रोकर बीते सब वर्त्तमान क्षण सुन्दर सपना हो अतीत
पेंगों में झूलें हार-जीत।

संकुचित असीम अमोघ शक्ति
जीवन को बाधामय पथ पर ले चले भेद से भरी भक्ति
या कभी अपूर्ण अहंता में हो रागमयी सी महाशक्ति
व्यापकता नियति प्रेरणा बन अपनी सीमा में रहे बंद
सर्वज्ञ ज्ञान का क्षुद्र अंश विद्या बन कर कुछ रचे छंद
कर्तृत्व सकल बनकर आवे नश्वर छाया-सी ललित कला
नित्यता विभाजित हो पल-पल में काल निरंतर चले ढला

तुम समझ न सको, बुराई सी शुभ इच्छा की है बड़ी शक्ति
हा विफल तर्क से भरी युक्ति।
जीवन सारा बन जाय युद्ध
उस रक्त अग्नि की वर्षा में वह जाँय सभी जो भाव शुद्ध
अपनी शंकाओं से व्याकुल तुम अपने ही होकर विरुद्ध
अपने को आवृत किये रहो दिखलाओ निज कृत्रिम स्वरूप
वसुधा के समतल पर उन्नत चलता-फिरता हो दम्भ स्तूप
श्रद्धा इस संस्कृति की रहस्य व्यापक विशुद्ध विश्वासमयी
सब कुछ देकर नवनिधि अपनी तुमसे ही वह तो छली गई
हो वर्तमान से वंचित तुम अपने भविष्य में रहो रुद्ध
सारा प्रपंच ही हो अशुद्ध
तुम जरा-मरण में चिर अशांत
जिसको अब तक समझे थे सब जीवन में परिवर्तन अनंत
अमरत्व वही अब भूलेगा तुम व्याकुल उसको कहो अंत
दुखमय चिरचिंतन के प्रतीक! श्रद्धा-वंचक बन कर अधीर
मानव संतति-ग्रह रश्मि रज्जु से भाग्य बाँध पीटे लकीर
'कल्याण-भूमि यह लोक' यही श्रद्धा-रहस्य जाने न प्रजा
अतिचारी मिथ्या मान इसे परलोक-वंचना से भर जा
आशाओं में अपने निराश निज बुद्धि-विभव से रहे भ्रांत
वह चलता रहे सदैव श्रांत
अभिशाप प्रतिध्वनि हुई लीन
नभ-सागर के अंतस्तल में जैसे छिप जाता महामीन
मृदु मरुत लहर में फेनोमय तारागण झिलमिल हुए दीन
निस्तब्ध मौन था अखिल लोक तन्द्रालस था वह विजन प्रांत
रजनी तम पुंजीभूत सदृश मनु श्वास ले रहे थे अशांत

वे सोच रहे थे—"आज वही मेरा अदृष्ट बन कर आया
जिसने डाली थी जीवन पर पहले अपनी काली छाया
लिख दिया आज उसने भविष्य ! यातना चलेगी अंतहीन
अब तो अवशिष्ट उपाय भी न !"

इन छंदों में हमें मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति के विकास का एक पूर्ण चित्र मिलता है और उसकी सारी दुर्बलताएँ भी समझ में आ जाती हैं। यह जो अनेक प्रकार के अतिचार मानव-सभ्यता में घुस आये हैं, उनका प्रतिकार कैसे हो ! क्या यह सारा जीवन ही युद्ध बन जाय ?

इड़ा का प्रवेश होता है। तर्क-वितर्क से जो अनेक छल-छिद्र मिल गये, उन्हें इड़ा (बुद्धि) की ही सहायता चाहिये कि ढँप सकें। इड़ा के साथ उसके सारे उपसर्ग भी आये। तर्कजाल, स्पष्टता, अनुराग-विराग ज्ञान-विज्ञान, कर्म, विचार। बुद्धिवाद को ही मनु जीवन का सत्यादर्श मान लेते हैं। मनु इड़ा से पूछते हैं—

इस विश्व कुहर में इन्द्रजाल
जिसने रच कर फैलाया है ग्रह-तारा-विद्युत नखतमाल
सागर की भीषणतम तरंग-सा खेल रहा वह महाकाल
तब क्या इस वसुधा के लघु लघु प्राणी को करने को सभीत
उस निष्ठुर की रचना कठोर केवल विनाश की रही जीत
तब मूर्ख आज तक क्यों समझे हैं सृष्टि उसे जो नाशमयी
उसका अधिपति ! होगा कोई जिस तक दुख की न पुकार गयी
सुख नीड़ों को घेरे रहता अविरत विषाद का चक्रमाल
किसने यह पट है दिया डाल

और इड़ा उन्हें बुद्धिवाद का पहला पाठ पढ़ाती है :

हाँ, तुम ही हो अपने सहाय
जो बुद्धि कहे उसको न मान कर फिर किसकी नर शरण जाय

जितने विचार स्वीकार रहे उनका न दूसरा है उपाय
यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐश्वर्य भरी शोधक विहीन
तुम उसका पटल खोलने को परिकर कस कर बन कर्मलीन
सबका नियमन शासन करते बस बढ़ा चलो अपनी क्षमता
तुम ही इसके निर्णायक हो, हो कहीं विषमता या समता
तुम जड़ता को चैतन्य करो विज्ञान सहज साधन उपाय
यश अखिल लोक में रहे छाय।"

इड़ा की सहायता से उजड़े सारस्वत प्रदेश में मनु एक नवीन विज्ञानमयी संस्कृति खड़ी कर देते हैं, परन्तु इस सब से उनकी तृप्ति नहीं होती—

इड़ा ढालती थी वह आसव, जिसकी बुझती प्यास नहीं,
तृषित कंठ को, पी-पी कर भी, जिसमें है विश्वास नहीं

अंत में मनु इड़ा को ही स्ववश करना चाहते हैं। फल होता है देवताओं का क्रोध। साथ ही प्रजा-क्षोभ। अब मनु ने देखा, इड़ा (बुद्धि) ने प्रजा में असंतोष फैला दिया है। वहाँ श्रद्धा तो है ही नहीं। है केवल एक मरुमरीचिका—

वह विज्ञानमयी अभिलाषा पंख लगा कर उड़ने की,
जीवन की असीम आशाएँ कभी न नीचे मुड़ने की;
अधिकारों की सृष्टि और उनकी वह मोहमयी माया,
वर्गों की खाई बन फैली कभी नहीं जो जुड़ने की।

अंत में भयंकर संघर्ष होता है। मनु आहत होते हैं। उस समय श्रद्धा ही आकर उनका उपचार करती है। विज्ञानमयी कर्म-प्रधान संस्कृति के ऊपर श्रद्धा-प्राणः सेवा-प्रधान संस्कृति की विजय दिखा कर कवि अपने दर्शन-चिंतन का एक चरण पूरा कर लेता है।

विज्ञानमयी कर्मप्रधान चेष्टा की असफलता के बाद मनु में निर्वेद की जागृति हो जाती है। श्रद्धा के साथ मानव (मनुश्रद्धा का

पुत्र) भी है। इन दोनों के प्रति अपने को कर्तव्यच्युत समझ कर मनु ग्लानि से भर जाते हैं। वह श्रद्धा से ही शांति की छाया माँगते हैं—

जल पीकर कुछ स्वस्थ हुए से
लगे बहुत धीरे कहने
"ले चल इस छाया के बाहर
मुझको दे न यहाँ रहने।
मुक्त नील-नभ के नीचे या
कहीं गुफा में रह लेंगे,
अरे झेलता ही आया हूँ
जो आवेगा सह लेंगे।"

अंत में मनु भाग जाने की सोचते हैं। वह श्रद्धा की शांति-छाया भी स्वीकार नहीं करेंगे। अपने कलुष से उसे कालिमा-रंजित नहीं करेंगे। वे—

सोच रहे थे, "जीवन सुख है ?
ना, यह विकट पहेली है,
भाग अरे मनु ! इन्द्रजाल से
कितनी व्यथा न झेली न ?"

वे पलायन की शरण ही ग्रहण करते हैं। इड़ा, श्रद्धा और मानव रह जाते हैं। श्रद्धा इड़ा को मनु के पलायन के पीछे का रहस्यज्ञान बतलाती है। इड़ा है तर्कमयी बुद्धि। मानव का जीवन-प्रवाह होना चाहिये ऋजु, सतत गतिशील, अबाध। इसी से वह मनु (मूल मानव) को पकड़ नहीं सकी। वह कहती है—

जीवन-धारा सुन्दर प्रवाह,
सत, सतत, प्रकाश सुखद अथाह,
ओ तर्कमयी ! तू गिने लहर,
प्रतिबिंबित तारा पकड़, ठहर ;

तू रुक-रुक देखे आठ पहर,
वह जड़ता की स्थिति भूल न कर;
सुख दुख का मधुमय धूप-छाँह,
तूने छोड़ी यह सरल राह!

वह बालक मानव को इड़ा के पास छोड़ कर मनु की खोज में जाना चाहती है। बुद्धि (इड़ा) और श्रद्धासत्ता (मानव) को लेकर ही इस संसार में भाग्योदय ही झलक दिखलाई पड़ सकती है। श्रद्धा, बुद्धि और कर्म (मनु) का अंतःविरोध ही संसार के कष्टों की नींव है। इसी से श्रद्धा मानव को श्रद्धा-तर्क-कर्म के समुच्चय का उपदेश देती है। कहती है—

"यह तर्कमयी तू श्रद्धामय,
तू मननशील कर कर्म अभय;
इसका तू सब संताप-निचय,
हर ले, हो मानव-भाग्य उदय;
सब की समरसता कर प्रचार;
मेरे सुत! सुन माँ को पुकार।"

अकेली श्रद्धा मनु की खोज में निकलती है और अंत में एक लतावृता गुहा के द्वार पर उसे तप-रत पा लेती है। श्रद्धा उसे इसे कठिन तप से विरत करती है। वह दाँते (Dante) की Beatrice की तरह प्रेमी-पति को अमर शांति का पथ दिखाना चाहती है। सुर-असुर (दैव-आसुरी भाव) के द्वन्द्व से मानव की सृष्टि हुई है, वह मनु की भूल ठीक कर लेगा। श्रद्धा को अपने पुत्र पर भरोसा है। तब मनु चिंतित क्यों हो? तभी ध्यानावस्थित मनु को आनन्द-नृत्य-पर शिव के तांडव के दर्शन होते हैं। आनन्द के कल्याणकारी (शिव = मंगलमय) रूप से मनु परिचित होते हैं। मनु आनन्द विभोर होकर चिल्ला पड़ते हैं—

'यह क्या ! श्रद्धे ! बस तू ले चल,
उन चरणों तक, दे निज संबल;
सब पाप-पुण्य जिनमें जलजल,
पावन बन जाते हैं निर्मल;
मिटते असत्य से ज्ञान लेश,
समरस अखंड आनंद वेश !

'रहस्य' और 'आनन्द' सर्गों में इसी भाव को विशेष ढंग से विकसित किया गया है। श्रद्धा बतलाती है कि मनु (मन) इच्छा, ज्ञान और कर्म के त्रिकोण के बीच में स्थित है। वहीं इनका केन्द्र है। इकेली इच्छा शब्द, स्पर्श, रस, रूप गंध का विलास मात्र है, परन्तु लालसा (वासना = इच्छा) ही जीवन की मध्य भूमि है। अतः उसे छोड़ा नहीं जा सकता। अकेला कर्म विश्रांत बना देता है—

कर्मचक्र सा घम रहा है
यह गोलक, बन नियति प्रेरणा;
सब के पीछे लगी हुई है
कोई व्याकुल नयी एषणा।
श्रममय कोलाहल, पीड़नमय
विकल, प्रवर्त्तन महामंत्र का;
क्षण भर भी विश्राम नहीं है,
प्राण दास है क्रियातंत्र का।

अकेला कर्म केवल 'पाणिपादमय पंचभूत' की उपासना बन जाता है। एक महान मरु-मरीचिका के पीछे दौड़ कर अंत में निष्फलता हाथ आती है। अतः यह कर्म-जगत 'अति भीषण' है। ज्ञान-क्षेत्र भी इतना ही निरर्थक है। अपनी निजी गुरुता उसमें है। सुख-दुख से उदासीनता, निर्मम न्याय, अहंकार, तर्कवाद, भेद-

विभेद ये सब जीवन के रस-स्रोत को सुखा देते हैं और इसी से केवल मात्र ज्ञान का बोझा बड़ा भारी है। आधुनिक जीवन की विडंबना इन्हीं ज्ञान, कर्म और इच्छा के तीन बिन्दुओं का विलगाव है। यही त्रिपुर है। इस त्रिपुर के तीनों बिन्दु अलग होने पर—

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की;
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडंबना है जीवन की।

श्रद्धा की स्मित रेखा दौड़ते ही यह त्रिपुर जल उठता है। ज्ञान, इच्छा और कर्म एकाकार हो जाते हैं। आनन्द, आनन्द, आनन्द। महाकाल का आनन्द-नृत्य होने लगता है और शृंग-डमरू की आनंद-ध्वनि त्रिलोक में फैल जाती है।

'आनन्द' सर्ग कामायनी का अंतिम सर्ग है। इस सर्ग में इड़ा और मनु हिम-प्रदेश की यात्रा करते हैं और उस कल्याण-तीर्थ पहुँच जाते हैं जहाँ आनन्द-पथ के पथिक श्रद्धा-मनु निवास करते हैं। मनु उन्हें आदर्श आनंदलोक का परिचय कराते हैं—

बोले "देखो कि यहाँ पर
कोई भी नहीं पराया।
हम अन्य न और कुटुम्बी
हम केवल एक हमीं हैं;

तुम सब मेरे अवयव हो
जिसमें कुछ नहीं कमी है
शापित न यहाँ कोई है
तापित पापी न यहाँ है;

जीवन-वसुधा समतल है
समरस है जो कि जहाँ है

इस प्रकार अतींद्रिय आनंद में कामायनी की कथा का अवसान होता है। देवसृष्टि के उच्छृङ्खल आनंदवाद से यह आनन्द भिन्न कोटि है, इसमें संदेह नहीं। यह विश्व चेतन-समुद्र है। यहाँ जीवन लहरों-सा बिखरा पड़ा है।। व्यक्तिगत छाप के कारण प्रत्येक लहर दूसरी से भिन्न जान पड़ती है, परन्तु है एक ही। निर्विकार भाव से, भेद-भाव भूल कर, ज्ञान-कर्म-इच्छा से समन्वित प्राणी मात्र की सेवा का मार्ग ही मानव के लिए अंतिम मुक्तिमार्ग है, यही कामायनी का संदेश है।

परन्तु इस दार्शनिक विचारधारा के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अन्य विचार 'कामायनी' में स्थान-स्थान पर गुँथे मिलते हैं। इन कथनों से प्रसाद की मननशीलता का पता चलता है। ये कथन कामायनी भर में बिखरे पड़े हैं और उन्हें एक स्थान पर बटोर लेना कठिन है। यहाँ हम केवल कुछ ही उद्धृत कर सकते हैं—

× × ×

सब परिवर्तन के पुतले;
हाँ, कि गर्व-रथ में तुरंग सा
जितना जो चाहे जुत ले।

(आशा)

दुःख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात;
एक परदा यह झीना नील
छिपाये है जिसमें सुख गात।
जिसे तुम समझे हो अभिशाप
जगत की ज्वालाओं का मूल;
हर्ष का वह रहस्य वरदान
कभी मत इसको जाओ भूल।

 (श्रद्धा)

और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान—
"शक्तिशाली हो, विजयी बनो"
विश्व में गूँज रहा जय-गान।
डरो मत अरे अमृत संतान
अग्रसर है मंगलमय वृद्धि;
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र,
खिंची आवेगी सकल समृद्धि।

(श्रद्धा)

बन जाता सिद्धांत प्रथम फिर
पुष्टि हुआ करती है;
बुद्धि उसी ऋण को सबसे ले
सदा भरा करती है।
मन निश्चित सा जब कर लेता
कोई मत है अपना;
बुद्धि दैव-बल से प्रमाण का
सतत निरखता सपना।

(कर्म)

जिसके हृदय सदा समीप है
वही दूर जाता है;
और क्रोध होता उस पर ही
जिससे कुछ नाता है।

(कर्म)

इस प्रकार के अनेक सूत्रों में प्रसाद ने अपने जीवन की सारी चिंता-साधना को भर दिया है। बीच-बीच में सूत्र में गूँथी हुई मणियों की तरह ये सुन्दर विचार कामायनी को और भी भव्य बना देते हैं। कामायनी मूलतः चिंता-प्रधान काव्य है, रस-प्रधान नहीं। अतः ये गहरे

विचार और भी अभिनंनीय हैं जो हो, इसमें संदेह नहीं कि कामायनी की विचारभूमि अत्यन्त पुष्ट है और उसमें जीवनोपयोगी अनेक सुन्दर सूक्तियों का संग्रह हो सका है।

परन्तु यह एक बड़ा प्रश्न भी उठता है। दर्शन और काव्य की रेखाएँ अलग-अलग हैं। केवल दशनचिंता के लिए लिखा हुआ काव्य बहुत उत्कृष्ट नहीं हो सकता। संसार में अनेक दार्शनिक मतवाद हैं उन्हें काव्य में ढाल देने से कोई महत्ता नहीं आजाती। कोई भी प्रतिभाशाली कवि कहीं का कोई विचार उठा सकता है। यदि उसने उसे पात्रों के जीवन के भीतर से हमें दिया, तो वह सफल हुआ। यदि वह केवल कथन-मात्र पर ही संतुष्ट हो गया तो उसकी असफलता में कोई संदेह नहीं। कामायनी की सबसे बड़ी दुर्बलता यही है कि उसका दर्शन मनु के जीवन के भीतर से नहीं आता। कवि श्रद्धा के मुँह से कहलाता है। स्वयं श्रद्धा को यह विचारधारा किस साधना के फलस्वरूप प्राप्त हुई, यह नहीं कहा जा सकता। कृष्ण के जीवन की वीथिका में गीता के उपदेश की महत्ता बढ़ जाती है। केवल गीता दर्शन-ग्रन्थ है, काव्य नहीं। बुद्ध की तरह मनु को अपने रहस्यज्ञान के लिए कोई साधना नहीं करनी पड़ी। इस तरह कामायनी का दर्शन कवि की मानसिक उधेड़बुन मात्र रह जाता है। मनु और श्रद्धा के छाया-व्यक्तित्व उसे स्थूलता प्रदान नहीं कर पाते। फिर भी अनेक काव्य-गुणों ने कामायनी की विचारधारा को सजाया ही है। इसमें कोई संदेह नहीं।

(८) छंद

'कामायनी' में कुछ निश्चित छन्दों का प्रयोग हुआ है। इन छन्दों के नामोल्लेख हम पहले कर चुके हैं। महाकाव्य की परिभाषा का पालन करते हुए प्रसाद ने प्रत्येक सर्ग में छंद बदल दिया है और इन तुकांत छंदों में वे पूर्णतः सफल हुए हैं। छन्द तो परंपरागत हैं, परन्तु उनका विधान-सौष्ठव (Structural grandeur) प्रसाद की

अपनी चीज़ है। विषय के अनुरूप छंदों की गति क्षिप्र या मन्द है और कहीं-कहीं प्रसाद अत्यंत ओजपूर्ण छंद रच सके हैं। 'कामायनी' में एक दर्जन के लगभग छंदों का सफल प्रयोग है। ये छन्द हैं ताटंक (चिन्ता, आशा, स्वप्न, निर्वेद), पादाकुलक (काम, लज्जा), रूपमाला (वासना), सार (कर्म), रोला (संघर्ष)। इनके अतिरिक्त नये प्रयोग भी हैं जैसे 'दर्शन' और ईर्ष्या सर्गों का पादाकुलक+पद्धरि छन्द, रहस्य सर्ग का ताटंक +S। इड़ा में गीतों (गेय पदों) का प्रयोग कर प्रसाद ने एक नवीन आदर्श स्थापित किया है और इसमें तुकांत में भी सुन्दर परिवर्तन कर दिये हैं। 'आँसू' (१६२६) का छंद प्रसाद को विशेष प्रिय है और इसी छंद में 'कामायनी' का अंतिम सर्ग 'आनन्द' लिखकर प्रसाद ने उसके प्रति विशेष आग्रह दिखलाया है।

वैसे प्रसाद ने कुछ अन्य रचनाओं में मुक्तछंद का प्रयोग भी किया है, परन्तु उनकी प्रतिभा इने-गिने वर्णात्मक छन्दों में ही विशेष रूप से प्रगट हुई है। वैसे इन्दुकाल (१६००-१६) से लेकर १६२६ (आँसू) तक उन्होंने छन्दों के बराबर प्रयोग किये हैं। प्रसाद के छन्दों को हम उनके व्यक्तित्व के साथ जुड़ा हुआ पाते हैं। विशेष-विशेष छन्दों में अपनी प्रतिभा के अनुसार थोड़ा-सा परिवर्तन कर उन्होंने अपना लिया है और ये छन्द लम्बे काल के प्रयोग के कारण प्रसाद को इतने सध गये हैं कि उनमें कहीं भी शिथिलता नहीं आती।

(६) प्रकृति

छायावाद काव्य की एक प्रधान शक्ति उसका प्रकृति-सम्बन्धी काव्य है। प्राचीन हिन्दी काव्य में उसकी तुलना की कोई चीज़ नहीं मिल सकती। प्राचीन हिन्दी कविता में प्रकृति का चित्रण प्रायः कुछ बँधे ढंग पर हुआ। या तो उपमान के रूप में, या भावों, (विशेषतः

रति भाव) के उद्दीपन-स्वरूप या साधारण स्वतंत्र वर्णन जिसमें वस्तु-नामावली ही की प्रधानता है। संश्लिष्ट योजना वाले चित्र गोस्वामी तुलसीदास के एकाध पद को छोड़कर बहुत कम हैं। मानव-हृदय के अनेक भावों के साथ प्रकृति को मिला कर नहीं देखा गया। स्वतंत्र चित्रण वीर-काव्य को छोड़ कर अन्य स्थान पर बहुत थोड़ा मिलता है। यहाँ भी प्रकृति-निरीक्षण का लगभग अभाव है। जायसी के काव्य में प्रकृति के रोमांटिक चित्र मिलते हैं और प्रकृति को अध्यात्म चित् तत्व की प्राप्ति में तत्पर एवं साधक के लिये साधना-रूप चित्रित किया गया है। इनके सिवा जो कुछ है वह अलंकार-प्रतिष्ठा और चमत्कार-विधान के लिये है जिसे हम किसी भी प्रकार महत्वपूर्ण नहीं कह सकते। वास्तव में, हिन्दी कविता का प्रारम्भ विदेशी संघर्ष की गोद में हुआ। उस समय कवियों के पास इतना समय ही नहीं था कि वे प्रकृति के सौन्दर्य को ओर मुड़ते। उसके बाद का जितना भी साहित्य है वह नैतिकता के रंग में रँगा हुआ है। सन्त-साहित्य प्रकृति की उपेक्षा करता है। वह आत्मा के द्वन्द और नैतिकता एवं नैतिक आदर्शों के आलोक में लौकिक व्यवहार के प्रश्न सामने रख कर चला है। उसका भौतिक सौन्दर्य के प्रति दृष्टिकोण ही दूसरा है। यह संसार जब माया है तो प्राकृतिक सौन्दर्य भी छलावा है। इसमें भूल जाना आत्मा का नाश करना है। अलबत्ता, सूफ़ी कवियों का प्रकृति के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण है और उसने उनके काव्य में एक महत्वपूर्ण स्थान पाया है। ये कवि रहस्यवादी थे। इनकी दृष्टि में प्रकृति परमात्म-सत्ता की ही अभिव्यक्ति है। वह दर्पण है जिसमें "पुरुष" का चित्र दिखलाई पड़ता है। इसी से उन्होंने प्रकृति को चिदात्म सत्ता की प्राप्ति का एक साधन माना है। उन्होंने प्रकृति का जो चित्र उपस्थित किया है, वह उनकी रहस्यानुभूति से रँगा होने के कारण अतिरंजित (Romantic) है। साथ ही वह जीवित, स्पंदित और सहानुभूतिपूर्ण है। साधक के सुख-दुख के साथ प्रकृति भी

सुख-दुख का अनुभव करती है। उसके उतने ही भाव हैं जितने मनुष्य के। सूफ़ियों ने विरह को प्रेम को चरम अभिव्यक्ति माना है। इससे उनकी प्रकृति भी क्रन्दनशीला, पुरुष-परित्यक्ता, आजीवन विरहिणी है।

भक्ति-काव्य की प्रकृति सम्बन्धी दृष्टि भी अपने आदर्शों के कारण संकीर्ण हो गई। हाँ, उसकी कृष्णशाखा ने अपने आराध्य को सौन्दर्य और प्रेम की अन्यतम विभूति मान कर उसकी उपासना की। स्वयम् कृष्ण-चरित का सम्बन्ध व्रज से था, इसलिए लोकनायक के चरित्र-चित्रण के प्रसंग में व्रजभूमि की प्रकृति के दृश्यों का भी चित्रण हुआ। व्रज-काव्य की प्रकृति गोपियों के हृदय की परछाँई है! उसके दर्पण में उनके हृदय के अनुभाव-विभाव प्रतिबिंबित होते हैं। उसमें प्रकृति और मनुष्य की अन्यतम भावनाओं का इतना एकात्म है कि हम चकित हो जाते हैं। रीतिकाल की तुलना अंग्रेज़ी के पोप और ड्राइडन के काल (१८वीं शती) की कविता से की जा सकती है। उस समय जो कविता हुई वह पूर्णतः नागरिक थी। उसका विकास नगरों में हुआ। उसमें या तो प्रकृति को कोई स्थान नहीं मिला या उसका परम्परा से पाया रूप, अनुभूत न होने पर भी, स्वीकार कर लिया गया। वह भी श्रृङ्गार के भावों अनुभावों और विभावों के उद्दीपन के लिए। रीतिकाल की प्रकृति स्वतंत्र नहीं है। उसकी बाढ़ रुकती गई है। वह कवि की दासी है और उसके बुलाने पर वेश्या की तरह अनैसर्गिक श्रृङ्गार करके उसके सामने आती है। गृहिणी-जैसा सरल, निश्छल और पातिव्रत्यपूर्ण व्यवहार उसका नहीं है।

आधुनिक युग में प्रकृति में पहली बार काव्य में स्वतंत्र रूप से स्थान मिला। उसकी एक अपनी अलग सत्ता प्रतिष्ठित हुई। आधुनिक युग में प्रकृति को काव्य-परिपाटी से उन्मुक्त करने वाले पहले कवि पं० श्रीधर पाठक हैं जिन्होंने गोल्डस्मिथ की पुस्तकों से प्रेरणा प्राप्त की। उनकी काश्मीर-सुषमा आदि कविताओं ने हिन्दी कविता को एक नई दिशा दिखाई। हिन्दी कविता के द्विवेदी-युग के कवि पाठकजी

की रचनाओं से प्रभावित रहे परन्तु उनमें से अधिकांश प्राकृतिक वस्तुओं के परिगणन से आगे नहीं बढ़ पाये। इन कवियों में प्रमुख पं० लोचनप्रसाद पांडेय और पं० रूपनारायण पांडेय हैं। परन्तु इस समय भी कवियों का एक बड़ा वर्ग प्रकृति को काव्य-परिपाटियों के भीतर से देख रहा था एवं संयोग और विप्रलंभ शृङ्गार के उद्दीपन के रूप में ही उसका वर्णन कर रहा था। इसी समय कुछ कवियों ने प्रकृति का अच्छा अध्ययन किया और अपने निरीक्षण के आधार पर उसका रूप स्थिर किया। इनमें प्रमुख हैं 'हरिऔध', पं० रामचन्द्र शुक्ल और श्री मैथिलीशरण गुप्त।

छायावादी कवियों ने प्रकृति को देखने का दृष्टिकोण ही बदल दिया। रंगों में, तूलिका में, अन्य उपादानों में बाहुल्य और बहुमूल्यता का समावेश हुआ। अंग्रेज़ी कविता के रोमांटिक कवियों (वर्डसवर्थ, शेली, कीटस) की भाँति उनकी पुकार थी—"प्रकृति की ओर लौटो!" अंग्रेजी रोमांटिक भावधारा की एक विशेषता आश्चर्य-भावना है। इसने हमारे कवियों को प्रकृति की ओर विशेष रूप से खींचा। प्रकृति को उनकी कविताओं में कितना महत्व मिला है, यह इसी से प्रगट होता है कि उनके तीन प्रमुख संग्रहों के नाम 'लहर' 'पल्लव' और 'परिमल' हैं। प्रकृति और उसके कार्यव्यापारों के प्रति आश्चर्य (पंत), प्रकृति को विशद वृहद चित्रपट पर अंकित करने का प्रयास (निराला), मीनाकारी के सुन्दर सफल चित्र (प्रसाद, पंत), प्रकृति में रहस्यमय शक्ति का अनुसंधान एवं आरोप (रामकुमार वर्मा, महादेवी) सहज सरल परिचित नागरिक एवं ग्रामीण चित्रण (भट्ट, नैपाली) —ये उनके केवल कुछ प्रयोग हैं। सारे छायावाद काव्य में प्रकृति को मनुष्य की वीथिका में रखा गया है, उस पर मानवीय व्यवहारों का आरोपण किया गया है, उसका नारी-रूप में चित्रण किया गया है और उसको मनुष्य के प्रति कभी सहानुभूतिपूर्ण दिखाया गया है, कभी उपेक्षापूर्ण। वास्तव में आधुनिक काव्य में प्रकृति को जो स्थान मिला

है, वह पहले नहीं मिला था। इसका कारण यह नहीं है कि कवि प्रकृति को अत्यन्त निकट से देखने लगा है। कारण बहुत कुछ—कम से कम जहाँ तक अधिकांश कवियों की बात है—इसके ठीक विपरीत है। हमारे अधिकांश कवि नागरिक हैं। उनका जीवन प्रकृति से दूर है। प्रतिक्रिया के रूप में वे प्रकृति की ओर खिंचते हैं। उनका दृष्टिकोण रोमांटिक है। वे प्रतिदिन के कार्य-व्यवहारों से हट कर नवीन सृष्टि करना चाहते हैं। इसीलिए हमारे युग में प्रकृति-सम्बन्धी अनेक वाद उठ खड़े हुए हैं। जो हो, हमने आज मनुष्य के साथ प्रकृति को देखना आरम्भ किया है।

आधुनिक काव्य के अधिक प्रकृति-चित्र मनुष्य-सादृप-चित्र हैं जैसे 'प्रसाद' का यह प्रभात-चित्र—

बीती विभावरी जागरी
अंबर पनघट में डुबा रही ताराघट ऊषा-नागरी
खगकुल कुल कलकल बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो, वह लतिका भी भर लाई
मधु मुकुल नवल-रस-गागरी

अथवा 'निराला' का संध्याचित्र—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान में उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे
तिमिरांचल में चंचलता का कहीं नहीं आभास
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर
किंतु जरा गम्भीर, नहीं है उनमें हास-विलास,
हँसता है तो तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले बालों में

परन्तु वस्तु-चित्रण भी कम नहीं हुआ है, जैसे पंत का क्षण-क्षण परिवर्तित प्रकृति का चित्र—

मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़
अवलोक रहा है बार-बार
नीचे जल में निज महाकार
जिसके चरणों में पड़ा ताल
दर्पण-सा फैला है विशाल
मोती-सी लड़ियों से सुन्दर
झरते हैं झाग भरे निर्झर
गिरिवर के उर से उठ-उठकर
तरुवर
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर
उड़ गया अचानक लो भूधर

या 'निराला', का निशागम का यह चित्र—

एकटक चकोर कोर दर्शन प्रिय
आशाओं भरी मौन भाषा बहु भावमयी
अस्ताचल ढले रवि
शशि-छवि विभावरी में
चित्रित हुई है देख
यामिनीगन्धा जगी;
घेर रही चंद्र को चाव से
शिशिर-भार व्याकुल कुल
खुले फूल झुके हुए;
आया कलियों में मधुर
मधु-उर यौवन उभार—
जागो फिर एक बार।

संक्षेप में, छायावादी कवियों के प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण में एक आसक्तिपूर्ण भावुकता का प्रवेश कर लिया। शीघ्र ही वे प्रकृति-रहस्यवादी हो गये। कितने ही कवियों के प्रकृति-चित्र उनके रहस्यवाद का या उनकी रोमांटिक भावनाओं के कारण अतिरंजित हैं। उनमें न प्रकृति की स्वाभाविकता है, न उनकी विशदता। उनकी प्रकृति उनकी कल्पना में रहती है, यद्यपि कहीं-कहीं वस्तु-वर्णन भी बड़े सुन्दर मिलते हैं। नवीनतम कवियों ने प्रकृति के प्राकृतरूप की ओर दृष्टि-पात किया है। वे प्रत्येक दिन के दृश्यों में सौन्दर्य भरने में सफल हुए हैं। उन्होंने उपेक्षित क्षेत्रों में प्रवेश किया है और उन्हें साहित्य-प्रेमियों के सामने रखा है यद्यपि उनका दृष्टिकोण आदर्शवाद से प्रभावित है। फिर भी वे प्रकृति के बहुत समीप हैं। महादेवी के शब्दों में "छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बंध में प्राण डाल दिये जो प्राचीनकाल से बिंब-प्रतिबिंब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी।"

'इन्दु' (१६०६-१६) में 'प्रसाद' का पहला लेख पहली संख्या में प्रकाशित हुआ। उसका शीर्षक था प्रकृति। 'इन्दु' में प्रकाशित प्रसाद की प्रारंभिक रचनाओं के सम्बंध में यह बात भूलने योग्य नहीं है कि उसका अधिकांश भाग प्राकृतिक काव्य है। पहले पहले प्रसाद की दृष्टि प्रकृति के सौन्दर्यपूर्ण गति-विधानों पर गई। इसके बाद तो उनके सारे काव्य में प्रकृति के अनेक रूपों के शुद्ध एवं रहस्यात्मक चित्र मिलेंगे। उन्होंने अपने इस प्रकृति-प्रेम को दर्शन की दृढ़ भित्ति देकर उपस्थित किया। वे कहते हैं—"साहित्य में विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतना का आरोप संस्कृत वाङ्मय में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद 'सौन्दर्य लहरी' के 'शरीरत्वं शम्भो—' का अनुकरण मात्र है" (रहस्यवाद: काव्य और कला, पृ० ३६)। कामायनी में प्रकृति के इसी विराट

एवं रहस्यमय रूप का अंकन है। कथावस्तु में प्रकृति को इस प्रकार गूँथ दिया गया है कि किसी भी प्रकार दोनों को अलग करना कठिन हो जाता है। प्रारम्भ में प्रकृति का एक प्रलय-चित्र है—

नीचे जल था, ऊपर हिम था
एक तरल था, एक सघन
एक तत्त्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन
दूर दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान
नीरवता-सी शिला-चरण से
टकराता फिरता पवमान

× × ×

इधर गरजतीं सिंधु-लहरियाँ
कुटिल काल के जालों सी
चली आ रहीं फेन उगलती
फन फैलाये व्यालों सी
धँसती धरा, धधकती ज्वाला
ज्वालामुखियों के निःश्वास
और संकुचित क्रमशः उसके
अवयव का होता था ह्रास
तरल तरंगाघातों से उस
क्रुद्ध सिंधु के विचलित-सी
व्यस्त महा-कच्छप-सी धरणी
ऊभ चूमती विकलित - सी
उड़ने लगे विलास-वेग सा
वह अति-भैरव जल-संघात

तरल तिमिरमय प्रलय-पवन का
होता आलिंगन प्रतिघात

कहीं कवि बाह्य चित्रण से हट कर प्रकृति की रहस्यमयी सत्ता पर आता है—

महानील उस परम व्योम में अंतरिक्ष में ज्योतिमान
ग्रह-नक्षत्र और विद्युतकण करते हैं किसका संधान ?
छिप जाते हैं और निकलते आकर्षण से खिंचे हुए ?
तृण-वीरुध लहलहे हो रहे किसके रस से सिंचे हुए ?
सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ ?
सदा मौन से प्रवचन करते जिसका वह अस्तित्व कहाँ ?

कहीं वह प्रकृति में पात्र के हृदय का स्पंदन सुनते हैं। मनु चले गये हैं। वह रात श्रद्धा के लिए सुन्दर होने पर भी कितनी भयावह है, कितनी धूमिल, कितनी निस्तब्ध !

उजले उजले तारक झलमल
प्रतिबिंबित सरिता वक्षस्थल
धारा बह जाती बिंब अटल
सुनता था धीरे पवन पटल
चुपचाप खड़ी थी वृक्षपाँत
सुनती जैसे कुछ निजी बात
धूमिल छाया में रही घूम
लहरी पैरों को रही चूम

कहीं कवि अत्यंत ऐश्वर्यशाली कल्पना-चित्र का निर्माण करता है। अलंकृत वर्णनों और शब्द-माधुर्य के सहारे एक अतींद्रिय लोक पाठक के नेत्रों के आगे उपस्थित हो जाता है—

नव नील कुंज हैं झीम रहे
कुसुमों की कथा न बंद हुई

है अंतरिक्ष आमोद भरा
हिमकणिका ही मकरंद हुई
इस इंदीवर से गंध-भरी
बुनती जाती मधु की धारा
मन-मधुकर की अनुरागमयी
बन रही मोहनी-सी कारा

सच तो यह है कि प्रसाद के प्राकृतिक चित्रों का ऐश्वर्य और उनका वैभिन्न्य अद्भुत है। प्रलय के बाद प्रकृति का उल्लासमय मुख देखिये—

वह विवर्ण मुख गात प्रकृति का
आज लगा हँसने फिर से
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में
शरद विकास नये सिर से
नव कोमल आलोक बिखरता
हिम संसृति पर भर अनुराग,
सित सरोज पर क्रीड़ा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग
नेत्र निमीलन करती मानो
प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने,
जलधि लहरियों की अँगड़ाई
बार-बार जाती सोने

हिमालय का एक सुन्दर चित्र है—

अचल हिमालय की शोभनतम
लता कलित शुचि सानु शरीर,
निद्रा में सुख स्वप्न देखता
जैसे पुलकित हुआ अधीर

संध्या घन - माला सी सुन्दर
ओढ़े रंग-बिरंगी छींट
गगन - चुम्बिनी शैल-श्रेणियाँ
पहने हुए तुषार किरीट

सारी 'कामायनी' ही प्रकृति के स्वप्न-शासन में गढ़ी गई है—

देख लो, ऊँचे शिखर का व्योम-चुम्बन व्यस्त
लौटना अंतिम किरण का और होना अस्त
चलो तो इस कौमुदी में देख आवें आज
प्रकृति का यह स्वप्न शासन, साधना का राज

प्रसाद ने प्रकृति को इसी 'स्वप्न', इसी 'साधना-भूमि', 'शम्भु का शरीर' या उनकी शक्ति के रूप में देखा-समझा है। कामायनी के हिमालय के चित्र तो कालिदास के प्रकृति-वैभव की याद दिला देते हैं। एक हज़ार वर्ष के हिन्दी काव्य में हिमालय का इतना सुन्दर चित्र और कहाँ है—

× × ×

सामने विराट धवल नग
अपनी महिमा से विलसित।
उसकी तलहटी मनोहर
श्यामल तृण बीरुध वाली;
नव कुंज, गुहा गृह सुन्दर
ह्रद से भर रही निराली।
वह मंजरियों का कानन
कुछ अरुण पीत हरियाली,
प्रतिपर्व सुमन संकुल थे
छिप गई उन्हीं में डाली।
यात्रीदल ने यह देखा
मानस का दृश्य निराला,

खग मृग को अति सुखदायक
छोटा सा जगत उजाला।
मरकत की वेदी पर ज्यों
रक्खा हीरे का पानी;
छोटा सा मुकुर प्रकृति का
या सोई राका रानी।
दिनकर गिरि के पीछे अब
हिमकर था चढ़ा गगन में;
कैलास प्रदोष प्रभा में
स्थिर बैठा किसी लगन में।
संध्या समीप आई थी
उस सर के, वल्कल - वसना;
तारों से अलक गुँथी थी
पहने कदंब की रसना।
खग कुल किलकार रहे थे,
कलहंस कर रहे कलरव;
किन्नरियाँ बनी प्रतिध्वनि
लेती थीं तानें अभिनव।

अंत में हम सारस्वत प्रदेश के उस प्रभात का उल्लेख करते इस प्रसंग को समाप्त करते हैं जब मनु को पहली बार इड़ा का परिचय हुआ—

करती सरस्वती मधुर नाद
बहती थी श्यामल घाटी में निर्लिप्त भाव सी अप्रमाद
सब उपल उपेक्षित पड़े रहे जैसे वे निष्ठुर जड़ विषाद
वह थी प्रसन्नता की धारा जिसमें था केवल मधुर गान
थी कर्मनिरंतरता प्रतीक चलता था स्ववश अनन्त ज्ञान
हिम शीतल लहरों का रह-रह कूलों से टकराते जाना
आलोक-अरुण किरणोंका उनपर अपनी छाया बिखराना

अद्भुत था ! निज निर्मित पथ का वह पथिक चल रहा निर्विवाद
कहता जाना कुछ सु-संवाद
प्राची में फैला मधुर राग
जिसके मंडल में एक कमल खिल उठा सुनहरा भर पराग
जिसके परिमल से व्याकुल हो श्यामल कलरव सब उठे जाग
आलोक रश्मि से छुने उषा-अंचल में आंदोलन अमंद
करता प्रभात का मधुर पवन सब वितरने को मरंद
सुषमा का मंडल सुस्मिताभ बिखराता संस्तृति पर सुराग
सोया जीवन का तम विराग

इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार के कला-पुष्ट प्रकृति - चित्र हिन्दी काव्य-साहित्य में बहुत अधिक नहीं हैं। आधुनिक हिन्दी काव्य में भी पंत और निराला के काव्य में ही इस कोटि के चित्र मिल सकेंगे।

(१०) नारी

'कामायनी' में सबसे पुष्ट व्यक्तित्व श्रद्धा (कामायनी) का ही है। वही इस महाकाव्य की नायिका है। मनु को अनंत आनंद का पथ वही दिखलाती है। सहज श्रद्धास्पदा, सहज प्रसन्ना, सेवाभावा आर्यनारी का प्रतीक श्रद्धा है। कवि ने कामायनी में श्रद्धा को जो महत्ता दी है, उससे यह स्पष्ट है कि वह नारी के नेतृत्व को संदेश-रूप में उपस्थित कर रहा है। जिस हिन्दी काव्य में किसी समय

'ढोल गँवार शूद्र औ' नारी
ये सब ताड़न के अधिकारी'

आदर्शवाक्य के रूप में प्रसिद्ध हुआ, वही हिन्दी काव्य हमारे समय में प्रगति के इतने डग भर सका कि उसमें नारी-नेतृत्व का बिगुल बज उठा। यह सचमुच बहुत बड़ी क्रांति की बात हुई। आज का कवि नर-नारी के सम्बन्ध को अत्यंत प्राकृतिक रूप में देखता है। पंत ने लिखा है—

"मुक्त करो नारी को
सजनि, सखी, प्यारी को"
"मानव के पशु के प्रति
हो उदार नव संस्कृति
युग युग से रच शत-शत नैतिक बंधन,
बाँध दिया मानव में पीड़ित पशु तन।
विद्रोही हो उठा आज पशु दर्पित
वह न रहेगा अब नव युग में गर्हित।
नहीं सहेगा रे वह अनुचित ताड़न,
रूढ़ि-नीतियों का गत निर्मम शासन!"

'प्रसाद' प्रारम्भ से ही रीति-कालीन अस्वस्थ नारी-चित्रण के विरोधी थे। इसीसे उनके नारी-सौंदर्य चित्रण का आधार अत्यंत निर्मल है। कल्पना के सुन्दरतम उपकरणों ने श्रद्धा और इड़ा की मूर्तियों को सँवारा है। हो सकता है, स्थूल चित्रणों के प्रेमी यहाँ कच-कुच-कटाक्ष या परम्परागत नखशिख न पाकर प्रसाद से 'अशरीरी' या 'कायिक मनोवृत्तियों के प्रच्छन्न पोषण' की शिकायत करें, परन्तु प्रसाद की दृष्टि वाह्य-सौंदर्य के तरलतम तत्त्वों को पकड़ती है। नारी के सौंदर्य-चित्रण की जो नखशिख-परिपाटी विद्यापति और सूरदास के काव्य में होती हुई देव और पद्माकर तक पहुँची है, प्रसाद का अलंकारिक एवं प्रतीकात्मक चित्रण इसका विरोधी है। रीतिकाल का कवि कहता है—

कुंदन को रँग फीको लगै,
झलकै अति अंगनि चारु गोराई;
आंखनि में अलसानि, चितौन में
मंजु विलासन की सरसाई।
को बिन मोल बिकात नहीं
'मतिराम' लहे मुसकानि-मिठाई?

ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि
त्यों-त्यों खरी निकरै सी निकाई ॥

वहाँ प्रसाद श्रद्धा के सौंदर्य को इस नई तूलिका से चित्रित करते हैं—

और देखा वह सुन्दर दृश्य
नयन का इंद्रजाल अभिराम
कुसुम-वैभव में लता - समान
चंद्रिका से लिपटा घनश्याम।
हृदय की अनुकृति वाह्य उदार
एक लंबी काया, उन्मुक्त
मधुपवन क्रीड़ित ज्यों शिशु साल
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।
मसृण गांधार देश के नील
रोम वाले मेषों के चर्म,
ढँक रहे थे उसका वपु कांत
बन रहा था वह कोमल वर्म
नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-बन बीच गुलाबी रंग।
आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घनश्याम;
अरुण रवि - मंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छवि-धाम।
या कि, नव इंद्र नील लघु शृङ्ग
फोड़ कर धधक रही हो कांत;

एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रांत।
घिर रहे थे घुँघराले बाल
अंस अवलंबित मुख के पास
नील घन-शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधि के पास।
और उस मुख पर वह मुसक्यान !
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम।
मिली यौवन छवि से ही दीप्त
विश्व की करुण कामना-मूर्ति;
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।
उषा की पहिली लेखा कांत,
माधुरी से भीगी भर मोद;
मद भरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारकद्युति की गोद

इस प्रकार अप्रस्तुत विधानों और अलंकारों के बीच से एक सुन्दर रमणी की माधुरी मूर्ति का विकास हिन्दी साहित्य में एक नई चीज़ थी। गर्भिणी श्रद्धा का एक दूसरा चित्र नारी - चित्रण के एक नये अध्याय के खुलने की सूचना देता है—

केतकी गर्भ - सा पीला मुँह
आँखों में आलस भरा स्नेह
कुछ कृशता नई लजीली थी
कंपित लतिका सी लिये देह

मातृत्व बोझ से झुके हुए
बँध रहे पयोधर पीन आज
कोमल काले ऊनों की नव
पट्टिका बनाती रुचिर साज
सोने की सिकता में मानों
कालिंदी बहती भर उसास
स्वर्गंगा में इंदीवर की
या एक पंक्ति कर रही हास

इड़ा का चित्र इससे कुछ भिन्न है। उसमें इड़ा पर बुद्धि (मनस्तत्व) का आरोपण किया गया है। अप्रस्तुत विधानों के लिए मानसिक व्यापारों की खोज की गई है। फलतः चित्र इतना सुन्दर नहीं बन पड़ा जितना श्रद्धा का। परन्तु यह चित्र फिर भी कवि की कुशल लेखनी का प्रमाण है—

बिखरीं अलकें ज्यों तर्कजाल
वह विश्वमुकुट-सा उज्ज्वलतम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संस्कृति के नव विज्ञान ज्ञान
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिये
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिये
त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों में थी गति भरी ताल

इस प्रकार के चित्रण कामायनी की विशेषता है। कवि ने प्रकृति, नर, नारी, मानव-जीवन सब को एक अत्यन्त उदात्त भावना से देखा है। कल्पना का विलास उसमें बहुत सही, अप्रगतिशीलता उसमें नहीं, वासना की बू उसकी रचनाओं में नहीं आती। एक नये उदात्त सौन्दर्य-दर्शन से उसकी काव्य-सृष्टि ओत-प्रोत है।

(११) मनस्तत्व

'कामायनी' में मनस्तत्त्व का बड़ा सुन्दर निरूपण है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक कहा है—"यदि हम इस विशद काव्य की अंतर्योजना पर ध्यान न दें, समष्टि रूप में कोई समन्वित प्रभाव न ढूँढें, श्रद्धा, काम, लज्जा, इड़ा इत्यादि को अलग अलग लें तो हमारे सामने बड़ी ही रमणीय चित्रमयी-कल्पना, अभिव्यंजना की अत्यन्त मनोरम पद्धति आती है। इन वृत्तियों की आभ्यन्तर प्रेरणाओं और वाह्य प्रवृत्तियों को बड़ी मार्मिकता से परख कर इनके स्वरूपों की नराकार उदभावना की गई है।" सच तो यह है कि 'कामायनी' प्रसाद के नाटक (रूपक) 'कामना' का ही नया संस्करण है। 'कामना' की रचना के कुछ दिनों वाद ही प्रसाद ने इस महाकाव्य की रचना आरम्भ की। सम्भव है, प्रारम्भ में उनका ध्यान किसी महाकाव्य की रचना पर नहीं गया हो, उन्होंने मानव-मन की अंतःवृत्तियों को लेकर ही कुछ लम्बी रचनाएँ लिखी हों। 'नारी और लज्जा' १६२८ ई० में त्यागभूमि (मासिक पत्रिका, अजमेर) में प्रकाशित हुई है। इसी प्रकार अनेक सर्गों के अनेक अंश मुक्तक रूप में वरावर प्रकाशित होतें रहे हैं। संभव है, वाद में मनु की कथा को लेकर प्रसाद ने इन्हें एक सूत्र में गूँथ दिया हो। जो हो, इसमें संदेह नहीं कि केवल मनस्तत्व के अध्ययन के लिए कामायनी के विभिन्न सर्ग अच्छी सामग्री उपस्थित करते हैं।

'चिंता' के सम्बन्ध में कवि कितनी मार्मिक उक्ति करता है—

हे अभाव की चपल बालिके,
 री ललाट की लेखा!
हरी-भरी सी दौड़-धूप, ओ
 जल-माया की चल-रेखा!

× × ×

अरी व्याधि की सूत्र - धारिणी !
अरी आधि, मधुमय अभिशाप !
हृदय-गगन में धूमकेतु सी,
पुण्य-सृष्टि में सुन्दर पाप ।

'काम' (रति-भाव) के सम्बन्ध में कवि की व्यंजना देखिये—

मधुमय बसंत जीवन-वन के
वह अंतरिक्ष की लहरों में ;
कब आये थे तुम चुपके से
रजनी के पिछले पहरों में !.

क्या तुम्हें देखकर आते यों,
मतवाली कोयल बोली थी !
उस नीरवता में अलसाई
कलियों ने आँखें खोली थीं !
जब लीला से तुम सीख रहे
कोरक कोने में लुक रहना ;
तब शिथिल सुरभि से धरणी में
बिछलन न हुई थी ? सच कहना !
जब लिखते थे तुम सरस हँसी
अपनी, फूलों के अञ्चल में ;
अपना कलकंठ मिलाते थे
झरनों के कोमल कल-कल में ।
निश्चित आह ! वह था कितना
उल्लास, काकली के स्वर में !
आनन्द प्रतिध्वनि गूँज रही
जीवन दिगंत के अम्बर में ।

'लज्जा' सर्ग तो सारा मनस्तत्त्व के आधार पर ही खड़ा है । 'लज्जा'

मनोभाव का इतना चमत्कारी व्यंजना-प्रधान वर्णन संसार के सारे काव्य-साहित्य में नहीं मिलेगा। लज्जा कहती है—

सब अङ्ग मोम से बनते हैं
कोमलता में बल खाती हूँ;
मैं सिमिट रही सी अपने में
परिहास गीत सुन पाती हूँ।
स्मिति बन जाती है तरल हँसी
नयनों में भरकर बाँकपना;
प्रत्यक्ष देखती हूँ सब जो
वह बनता जाता है सपना।

× × ×

छूने में हिचक, देखने में
पलकें आँखों पर झुकती हैं,
कलरव परिहास भरी गूँजें
अधरों तक सहसा रुकती हैं।
संकेत कर रही रोमाली
चुपचाप बरजती खड़ी रही;
भाषा बन भौंहों की काली
रेखा सी भ्रम में पड़ी रही।

'कर्म' सर्ग में 'सत्य' के सम्बन्ध में कवि कहता है—

और सत्य! यह एक शब्द तू
कितना गहन हुआ है;
मेधा के क्रीड़ा-पिंजर का
पाला हुआ सुआ है।
सब बातों में खोज तुम्हारी
रट-सी लगी हुई है;

किंतु स्पर्श से तर्क करों से
बनता 'छुई-मुई' है।

'बिखरी अलकें ज्यों तर्कजाल' गीत में इड़ा के सौंदर्य-चित्रण में इड़ा-तत्व (बुद्धि) की भी सुन्दर व्यंजना कर दी गई है। नारी, प्रेम और पुरुष-भाव की क्रिया-प्रतिक्रिया का कितना सुन्दर रूप इन पंक्तियों में मिलेगा—

तुम अजस्र वर्षा सुहाग की
और स्नेह की मधु रजनी,
चिर अतृप्ति जीवन यदि था तो
तुम उसमें संतोष बनी।
कितना था उपकार तुम्हारा
आश्रित मेरा प्रणय हुआ,
कितना आभारी हूँ, इतना
संवेदन - मय हृदय। हुआ।
किंतु अधम मैं समझ न पाया
उस मंगल की माया को,
और आज भी पकड़ रहा हूँ,
हर्ष शोक की छाया को।
मेरा सब कुछ क्रोध-मोह के
उपादान से गठित हुआ,
ऐसा ही अनुभव होता है,
किरनों ने अब तक न छुआ।

ऊपर के उद्धरणों से कामायनी की व्यापक भूमि पर स्पष्ट रूप से प्रकाश पड़ता है। प्रसाद की कामायनी अनेक दृष्टिकोणों से महान् है, परन्तु सबसे महानू इसलिए है कि उसमें केवल कथा कहने की जड़, इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति नहीं है। मानव मनोविज्ञान, मनुष्य के

मनोभाव, आभ्यांतरिक संघर्ष, आनन्द और रहस्य की जैसी सुन्दर अभिव्यंजना इस रचना में हुई है, वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। मनु साधारण मनुष्य नहीं है। वह आदि मनुष्य हैं। संस्कृतिजन्य विकारों से अछूते मूल-मानव मनोभाव को हो मनु कहा गया है। चिंता, आशा, काम, वासना, कर्म, कर्मजन्य अवसाद और दुःख-सुख, ईर्ष्या-द्वेष आदि के बीच में से निरंतर आगे बढ़ता हुआ मानव-मन सुख-शांति की खोज में बन-बन मारा फिरता है। मनु की कथा एक तरह से प्रत्येक मनुष्य की कथा है, प्रत्येक मनुष्य की अपनी कथा है। श्रद्धा और बुद्धि में से एक को चुनकर जीवन के कर्मपथ पर बढ़ने वाला व्यक्ति अंत में हार जाता है। केवल श्रद्धा अंधविश्वास है। केवल बुद्धि भौतिकवाद का निरर्थक वात्या-चक्र है। श्रद्धा-समन्वित बुद्धिवाद ही मनुष्य को सुख-शांति दे सकता है। परंतु संसार छोड़ कर भागने की आवश्यकता मनुष्य को नहीं है। वह 'स्व' को छोड़ कर 'पर' को ग्रहण करे। श्रद्धा-बुद्धि के समन्वय द्वारा कर्म को सेवा-भाव द्वारा ग्रहण करने वाला भावी मानव ही इस मनुष्य-जाति की आशा है। 'कामायनी' में मनस्तत्त्व के भीतर से यही महान् संदेश दिया गया है।

(१२) भाषा-शैली

'कामायनी' में हम प्रसाद की भाषा-शैली को प्रौढ़तम रूप में पाते हैं। १६२६ में 'आँसू' प्रकाशित हुआ। यह प्रसाद की प्रौढ़ रचना है। कामायनी का समय १६२८—३६ है। अतः यह प्रसाद के प्रौढ़ जीवन की रचना है। इसी से उसकी भाषा-शैली में अपूर्णता का आभास भी नहीं हो सकता। द्विवेदी-युग की सरल, ऋजु रचना के समकक्ष प्रसाद की रचना एक नितांत नवीन लोक की सृष्टि। जान पड़ती है। उनकी भाषाशैली की प्रधान विशेषताएँ हैं।

(१) उसकी सरसता

(२) उसकी संकेतिकता (लाक्षणिक प्रयोग)
(३) उसकी ऐश्वर्यशाली मूर्तिमत्ता
(४) प्रसादगुण
(५) मादकता
(६) गीतात्मकता

ये सब विशेषाएँ कामायनी में प्रचुर मात्रा में मिल जाती हैं। सरसता का एक उदाहरण लीजिये। मनु श्रद्धा से कहते हैं—

मधु बरसती विधु किरन हैं काँपती सुकुमार।
पवन में है पुलक मंथर, चल रहा मधु-भार।
तुम समीप, अधीर इतने आज क्यों हैं प्राण?
छक रहा है किस सुरभि से तप्त होकर प्राण?

आज क्यों संदेह होता रूठने का व्यर्थ;
क्यों मनाना चाहता-सा बन रहा असमर्थ!
धमनियों में वेदना-सा रक्त का संचार;
हृदय में है काँपती धड़कन, लिये लघु भार!
चेतना रंगीन ज्वाला परिधि में सानंद,
मानती सी नित्य सुख कुछ गा रही है छंद!
अग्निकीट समान जलती है मरी उत्साह;
और जीवित है, न छाले हैं न उसमें दाह!
कौन हो तुम विश्व माया कुहुक सी साकार,
प्राण सत्ता के मनोहर भेद सी सुकुमार!
हृदय किसकी कांत छाया में लिये निश्वास,
थके पथिक समान करता व्यजन ग्लानि विनाश!

सांकेतिकता के लिये सारा 'लज्जा' सर्ग खुला पड़ा है। 'लज्जा' का कैसा सुन्दर चित्रण इन पंक्तियों में है—

कोमल किसलय के अञ्चल में
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती सी;
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती सी।
मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद निखरता ज्यों;
सुरभित लहरों की छाया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों;
वैसी ही माया में लिपटी
अधरों पर उँगली धरे हुए;
माधव के सरस कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए।
नीरव निशीथ में लतिका सी
तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?
कोमल बाहें फैलाये ही
आलिंगन का जादू पढ़ती !
किन इन्द्रजाल के फूलों से
लेकर सुहाग कण राग भरे;
सिर नीचा कर हो गूँथ रही
माला जिससे मधु-धार ढरे ?
पुलकित कदंब की माला सी
पहना देती हो अन्तर में;
झुक जाती है मन की डाली
अपनी पलभरता के डर में।
वरदान सदृश हो डाल रही
नीली किरनों से बुना हुआ;

यह अञ्चल कितना हलका सा
कितने सौरभ से सना हुआ।

ऐश्वर्य का चित्रण पढ़िये—

श्रद्धा उस आश्चर्यलोक में मलय-बालिका सी चलती,
सिंहद्वार के भीतर पहुँची, खड़े प्रहरियों को छलती;
ऊँचे स्तम्भों पर बलभीयुत बने रम्य प्रासाद वहाँ,
धूम धूम सुरभित गृह, जिनमें थी आलोक-शिखा जलती
स्वर्ण कलश शोभित भवनों से लगे हुए उद्यान बने,
ऋजु प्रशस्त पथ बीच बीच में, कहीं लता के कुंज घने;
जिनमें दम्पति समुद विहरते, प्यार भरे दे गलबाहीं,
गूँज रहे थे मधुप रसीले, मदिरा-मोद पराग सने।
देवदारु वे प्रलंब भुज, जिनमें उलझी वायु तरंग,
मुखरित आभूषण से कलरव करते सुन्दर बाल विहंग,
आश्रय देता वेणुरन्ध्र से निकली स्वरलहरी ध्वनि को,
नागकेसरों की क्यारी में अन्य सुमन भी थे बहुरंग।
नव मंडप में सिंहासन सम्मुख कितने ही मंच जहाँ
एक ओर रक्खे हैं सुन्दर मढ़े चर्म से सुखद वहाँ,
आती है शैलेय अगरु की धूमगंध आमोद भरी,
श्रद्धा सोच रही सपने में—'यह लो मैं आ गयी कहाँ।'

प्रसादगुण, मादकता और गीतात्मकता तो कामायनी के पृष्ठ-पृष्ठ में है, पंक्ति-पंक्ति में है। इन्हें ढूँढने के लिये विशेष प्रयास नहीं करना पड़ेगा। प्रसाद की शैली आनन्दवादी कवि की आह्लादिनी शैली है। वह लुका-छिपी की कला जानती है, परन्तु वही गंगा की निर्मल शैल-धारा की भाँति सहज, ऋजु, स्वाभाविक गति से गुनगुनाती हुई भी बह सकती है। शैली की ये विशेषताएँ प्रसाद की रचना को व्यक्तित्व प्रदान करती हैं।

परन्तु ये शैली की विशेषताएँ केवल प्रसाद के काव्य में ही नहीं मिलेंगी। अन्य छायावादी कवियों के काव्य में भी इनका थोड़ा-बहुत प्रयोग हुआ है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद काव्य की शैली-गत विशेताओं पर विशद रूप से लिखा है। इस शैली की विशेषताएँ हैं—

१—चित्रभाषा या अभिव्यंजना-पद्धति पर बल

२—भावानुभूतियों की कल्पना जिससे काव्य में सचाई (Sincerity) का अभाव हो गया। 'रहस्य-भावना' और अभिव्यंजना-पद्धति ही प्रधान लक्ष्य हो जाने और काव्य को केवल कल्पना की सृष्टि कहने का चलन हो जाने पर भावानुभूति भी कल्पित होने लगी। जिस प्रकार अनेक प्रकार की रमणीय वस्तुओं की कल्पना की जाती है उसी प्रकार अनेक प्रकार की विचित्र भावानुभूतियों की कल्पना भी बहुत कुछ होने लगी। काव्य की प्रकृत पद्धति तो यह है कि वस्तु-योजना चाहे लोकोत्तर है पर भावानुभूति का स्वरूप सच्चा अर्थात् स्वाभाविक वासनाजन्य हो। भावानुभूति का स्वरूप भी यदि कल्पित होगा तो हृदय से उसका सम्बन्ध क्या रहेगा। भावानुभूति भी यदि ऐसी होगी जैसी नहीं हुआ करती, तो सचाई (Sincerity) कहाँ रहेगी ?'

३—प्रतीकवाद (Symbolism)। प्रस्तुत के स्थान पर अधिकतर अप्रस्तुत का प्रयोग। 'छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।'

४—अंग्रेज़ी की लाक्षणिक पदावलियों का ज्यों का त्यों अनुवाद।

५—बंग-भाषा के कवियों के ढंग पर श्रुतिरंजक या नादानुकूल पदावली का प्रयोग।

६—अन्योक्ति-पद्धति का अवलंबन। 'छायावाद का चलन

द्विवेदी काल की रूखी इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। अतः रस प्रतिक्रिया का प्रदर्शन केवल लक्षणा और अन्योक्ति के प्राचुर्य के रूप में ही नहीं, कहीं-कहीं उपमा और उत्प्रेक्षा की भरमार के रूप में भी हुआ। इनमें से उपादान और लक्षण-लक्षणाओं को छोड़ और सब बाते किसी न किसी प्रकार की साम्य-भावना के आधार पर ही खड़ी होने वाली हैं।' 'छायावाद बड़ी सहृदयता के साथ प्रभाव-साम्य पर ही विशेष लक्ष्य रख कर चला है। कहीं-कहीं तो बाहरी साहश्य या साधर्म्य अत्यन्त समीप का न रहने पर भी आभ्यंतर प्रभाव-साम्य लेकर ही अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है। ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप में या प्रतीकवत् (Symbolic) होते हैं—जैसे, सुख, आनन्द, प्रफुल्लता, यौवनकाल इत्यादि के स्थान पर उनके द्योतक उषा, प्रभात, मधुकाल; प्रिया के स्थान पर मुकुल, प्रेमी के स्थान पर मधुप, श्वेत या शुभ्र के स्थान पर कुन्द, रजत; माधुर्य के स्थान पर मधु; दीप्तिमान् या कांतिमान् के स्थान पर स्वर्ण, विषाद या अवसाद के स्थान पर अंधकार, अँधेरी रात, संध्या की छाया, पतझड़, मानसिक आकुलता या क्षोभ के स्थान पर झंझा, तूफ़ान; भावतरंग के लिये झंकार; भाव-प्रवाह के लिए संगीत या मुरली का स्वर इत्यादि। आभ्यंतर प्रभाव-साम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ और प्रचुर विकास छायावाद की काव्य-शैली की असली विशेषता है।

७—लाक्षणिकता का प्रयोग। इसमें वैचित्र्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति ही अधिक है।

८—गीतात्मकता। इसी से रचनाओं में अन्विति कम दिखाई पड़ती है।

९—प्रकृति के वस्तु-व्यापारों पर मानुषी वृत्तियों का आरोप (Personification) परन्तु कहीं-कहीं यह आरोप वस्तु-व्यापारों की प्रकृत व्यंजना से बहुत दूर जा पड़े हैं।

१०—प्रकृति के नाना रूपों के सौन्दर्य की भावना केवल स्त्री-सौन्दर्य के आरोपण द्वारा व्यंजित करना। 'सौन्दर्य की भावना सर्वत्र स्त्री का चित्र चिपका कर करना खेल-सा हो जाता है।' 'उषासुन्दरी के कपोलों की ललाई, रजनी के रत्नजड़ित केश-कलाप, दीर्घ विश्वास और अश्रुविंदु तो रूढ़ हो ही गये हैं; किरन, लहर, चंद्रिका, छाया, तितली, सब अप्सराएँ या परियाँ बन कर सामने आती हैं। इसी तरह प्रकृति के नाना व्यापार भी चुंबन, आलिंगन, मधुग्रहण, मधु-दान, कामिनी की ब्रीड़ा इत्यादि में अधिकतर परिगणित दिखाई देते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति की नाना वस्तुओं और व्यापारों से अपना-अपना अलग-अलग सौन्दर्य भी है जो एक ही प्रकार की वस्तु या व्यापार के आरोप द्वारा अभिव्यक्त नहीं हो सकता।'

'कामायनी' में छायावाद की भाषा-शैली सम्बन्धी ये सब दुर्बलताएं मिल जायेंगी, परन्तु अनेक स्थलों पर कवि के कौशल ने इन्हीं को बल देकर उपस्थित किया है। वास्तव में छायावाद काव्य की भाषा-शैली-विषयक सारी विशेषताओं का जितना प्रतिनिधित्व 'कामायनी' में है, उतना किसी एक रचना में नहीं।

(१३) 'कामायनी' की साहित्यिकता

ऊपर हमने कामायनी के भिन्न-भिन्न साहित्य-पक्षों पर विचार किया है। हमने जो लिखा है, उससे यह स्पष्ट है कि कामायनी में साहित्यिकता की कमी नहीं है। वैसे कामायनी का विषय विशेष रूप से जीवन-चिन्तन है। कवि आधुनिक जीवन के लिए किसी दार्शनिक आधार-भूमि की खोज अनिवार्य रूप से वांछनीय मानता है। अतः वह इसी खोज में लग जाता है। आदिम आर्यपुरुष मनु ने भी इसी तरह जीवन-दर्शन की खोज की होगी। इसी से वह मनु को पात्र बनाकर चलता है। देवसृष्टि के तिरोहित होने के कारण मनु चिन्ता-ग्रस्त हैं। देवों के आनन्दवादी अहंतामूलक जीवनदर्शन के प्रति उन्हें

जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है। वह क्रमशः तप, राग, विराग, कर्म जैसे सर्वमान्य जीवन-दर्शनों को अपनाते हैं, परन्तु इनमें से कोई भी उन्हें शांति नहीं दे सकता। अंत में श्रद्धा द्वारा उन्हें सुख का मार्ग दिखाई देता है। यही आनन्द मार्ग है। ज्ञान, इच्छा और कर्म के त्रैत को एक बिन्दु पर लाकर ही संसार के वैषम्यजनित दुःखों का परिहार हो सकता है। यही आधुनिक विश्व को कामायनी का संदेश है।

परन्तु दार्शनिकों की भाँति प्रसाद अमूर्त्त दर्शन-विवेचन को अपना विषय नहीं बनाते। यदि वे ऐसा करते तो वे तत्वचिन्तक होते कवि नहीं। गीता तत्वचिंतना है, कविता नहीं, यद्यपि गीता के अनेक श्लोकों में उच्च कोटि के साहित्य-गुण स्थान-स्थान पर मिलेंगे। यही बात प्रसाद की कामायनी की भी होती। परन्तु प्रसाद ने मनु, श्रद्धा और इड़ा के पार्थिवक और मानसिक संघर्षों का लेकर इस दार्शनिक विवेचना को काव्य, कला और रस की भूमि दी। इसी से कामायनी का साहित्य-रस सूख नहीं गया है।

जैसा हम पहले कह चुके हैं, प्रसाद पात्रों के जीवन के माध्यम से अपना दार्शनिक संदेश नहीं दे सके। यह उनकी दुर्बलता रही। इसीलिए श्रद्धा, मनु और इड़ा का संघर्ष संघर्ष नहीं लगता। ये पात्र जैसे अपने दार्शनिक विचार प्रदर्शित करने के लिए ही जी रहे हों। परन्तु इतना होने पर भी कामायनी में साहित्यिकता की काफ़ी मात्रा है। कथारस तो उसमें है ही। भाषा-शैली के अनेक नये प्रयोग भी मिलेंगे। अलंकार-योजना और मूर्तिमत्ता की दृष्टि से तो यह रचना विशेष रूप से धनी है। इस रचना में कवि ने जीवन को एक नई दृष्टि से देखा है और उसे सच्चाई से अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है। भावों की लुकाछिपी और संघात-प्रतिघात का लाघव देखना हो तो 'लज्जा' सर्ग देखिये। दर्शन और साहित्य का गठबन्धन देखना है तो 'इड़ा', 'रहस्य' और 'आनन्द' सर्गों का अध्ययन कीजिये।

नर-नारी के सौन्दर्य के अनेक चित्र कामायनी के गौरव हैं। संक्षेप में, कामायनी में साहित्य और दर्शन-चिन्तन को मणि-कांचन संयोग प्राप्त हुआ है।

'कामायनी' में महाकाव्यत्व है, इसमें संदेह नहीं, परन्तु अपने युग की रोमांटिक परम्परा के कारण उसमें कथावस्तु विशृङ्खल हो गई है और कथा की धारा रोक कर कवि अनेक अनावश्यक प्रबंध बाँधने लगता है। वह अपने सौन्दर्य-चिन्तन और अपने उक्ति-वैचित्र्य में खो जाता है। परन्तु यह विशृङ्खलता ही कामायनी को बल प्रदान करती है। जहाँ महाकाव्य में पाठक दूर दूर रह जाता है, वहाँ इस स्वच्छन्दतावादी रचना में कवि काव्य के अंतरतम प्रदेशों में प्रवेश कर जाता है। उदाहरण के रूप में इस 'निर्वेद' सर्ग की कुछ पंक्तियाँ लेते हैं। यहाँ मनु अपने गत जीवन की बात कह रहे हैं, परन्तु वह बात हमारे-आपके अपने जीवन की बात हो सकती है :

जब जीवन में साध भरी थी
उच्छृङ्खल अनुरोध भरा,
अभिलाषाएँ भरीं हृदय में
अपनेपन का बोध भरा।
मैं था, सुन्दर कुसुमों की वह
सघन सुनहली छाया थी,
मलयानिल की लहर उठ रही
उल्लासों की माया थी!
उषा अरुण प्याला भर लाती
सुरभित छाया के नीचे,
मेरा यौवन पीता सुख से
अलसाई आँखें मींच।
ले मकरंद नया चू पड़ती
शरद प्रात की शैफाली,

बिखरातीं सुख ही, संध्या की
सुन्दर अलकें घुँघराली।

× × ×

सहसा अंधकार की आँधी
उठी क्षितिज से वेगभरी,
हलचल से विक्षुब्ध विश्व,
थी उद्वेलित मानस-लहरी।
व्यथित हृदय उस नीचे नभ में
छायापथ सा खुला तभी,
अपनी मंगलमयी मधुर स्मिति
करदी तुमने देवि जभी।
दिव्य तुम्हारी अमर अमिट छवि
लगी खेलने रंग-रली,
नवल हेमलेखा सी मेरे
हृदय-निकष पर खिंची भली।
अरुणांचल मनमंदिर की वह
मुग्ध माधुरी नव प्रतिमा;
लगी सिखाने स्नेहमयी सी
सुन्दरता की मृदु महिमा।

× × ×

श्वास पवन पर चढ़कर मेरे
दूरागत वंशी रव सी,
गूँज उठी तुम, विश्व-कुहर में
दिव्य रागिनी अभिनव सी।
जीवन जलनिधि के तल से जो
मुक्ता थे वे निकल पड़े,

जग मंगल संगीत तुम्हारा
गाते मेरे रोम खड़े।

इस प्रकार के न जाने कितने प्रबन्ध हैं, जो कामायनी को उच्च साहित्य-कोटि प्रदान करते हैं। यह सच है कि कामायनी में बहुत कुछ नहीं है, परंतु उसमें बहुत कुछ है भी। कम से कम भारतीय काव्य-साहित्य में दर्शन और मनस्तत्त्व के आधार पर एक नई काव्य-परंम्परा प्रसाद ने दी है। आगे का युग इस रचना का मूल्य समझेगा और इससे सहारा लेकर इसके पदचिह्नों पर चल कर काव्य के नए राजमहलों का निर्माण करेगा।

४

उपसंहार

पिछले पृष्ठों में हमने कामायनी पर विशद रूप से विचार किया है। आधुनिक काव्य-साहित्य में कामायनी का महत्वपूर्ण स्थान है इसमें कोई संदेह नहीं। इस प्रकार की चीज न पहले कभी आई, न आ सकती है। प्रसाद का सारा व्यक्तित्व, उनकी सारी काव्य-साधना, उनकी सारी कला परिणाम-रूप से इस महाकाव्य में मिल जाती है। भारतीय काव्य-परम्परा में कामायनी निसंदेह अभिनव सृष्टि होगी।

कामायनी के ऊपर लांछनाएँ भी कम नहीं हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं—"इसमें उन्होंने (प्रसाद ने) अपने प्रिय 'आनंद-वाद' की प्रतिष्ठा दार्शनिकता के ऊपरी आभास के साथ कल्पना की मधुमती भूमिका बना कर की है। यह 'आनंदवाद' वल्लभाचार्य के 'काम' या आनन्द के ढङ्ग का न होकर, तांत्रिकों और योगियों की अंतर्भूमि पद्धति पर है।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ८२६) "यदि मधुचर्या का अतिरेक और रहस्य की प्रवृत्ति बाधक न होती तो इस काव्य के भीतर मानवता की योजना शायद अधिक पूर्ण और सुव्य-वस्थित रूप में चित्रित होती। कर्म को कवि ने या तो काम्य यज्ञों के बीच दिखाया है अथवा उद्योग-धंधों या शासन-विधानों के बीच। श्रद्धा के मङ्गलमय योग से किस प्रकार कर्म कर्म का रूप धारण करता है, यह भावना कवि से दूर ही रही। इस भव्य और विशाल भावना के भीतर उग्र और प्रचंड भाव भी लोक के मङ्गल-विधान के अङ्ग हो जाते हैं। श्रद्धा और कर्म का सम्बंध अत्यंत प्राचीन काल से प्रतिष्ठित है। महाभारत में श्रद्धा धर्म की पत्नी कही गई है। हृदय के आधे

पक्ष को अलग रखने से केवल कोमल भावों की शीतल छाया के भीतर आनन्द का स्वप्न देखा जा सकता है; व्यक्त जगत के बीच उसका अविर्भाव और अवस्थान नहीं दिखाया जा सकता।" इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद के काव्य की दार्शनिक भूमि के प्रति असंतोष का भाव दिखलाया गया है।

इन पंक्तियों पर प्रसाद के काव्य की दार्शनिक भूमि पर कई लांछनाएँ हैं :

(१) प्रसाद का आनंदवाद तांत्रिकों और योगियों की अंतर्भूमि पद्धति पर है।

(२) मधुचर्या का अतिरेक

(३) रहस्य की प्रवृत्ति

(४) कर्म के मङ्गलमय (श्रद्धासमन्वित कर्म) रूप के संबंध में कवि ने विचार नहीं किया जो धर्म का रूप ग्रहण कर लेता है। वास्तव में ये लांछनाएँ कोई लांछनाएँ नहीं हैं। आलोचक का काम है कि वह कवि को कवि के दृष्टिकोण से देखे। अपने दृष्टिकोण का आरोप उस पर न करे। यदि वह प्रत्येक कवि से यही चाहेगा कि वह उसकी अपनी विचारधारा की ही पुष्टि करे तब वह कवि-विशेष के साथ अन्याय करेगा। प्रसाद के सम्बंध में लिखते हुए भी हमें सतर्क रहना होगा। कवि ने क्या नहीं दिया, यह हम कहाँ तक कह सकेंगे। श्रद्धासमन्वित कर्म धर्म का रूप ग्रहण कर लेता है, यह बात ठीक है। परंतु प्रसाद कर्म के प्रचारक नहीं हैं। केवल श्रद्धा अंधविश्वास में बदल जाती है। केवल श्रद्धा पर आधारित कर्म जड़ कर्मवाद (Tradition) बन जाता है। यह जड़ कर्मवाद मनुष्य का जीवन-रस सुखा देता है और इसी के द्वारा जातियाँ मृत्यु को प्राप्त होती हैं। प्रसाद इस सत्य को जानते थे, इसमें कोई संदेह नहीं। इसी से उन्होंने श्रद्धा को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान देते हुए भी सब कुछ नहीं बनाया। मनुष्य का मन तो इड़ा (बुद्धि) से परिचालित होता है।

मन की कई स्वाभाविक प्रेरणाएँ भूल जाने की बात नहीं हैं। इसीसे प्रसाद मनु को श्रद्धा से विरक्त बना देते हैं और इड़ा के प्रति उनका तीव्र आकर्षण चित्रित करते हैं। परन्तु केवल बुद्धिवाद भी विडंबना मात्र हैं। अतः मनु यहाँ भी भागते हैं। बुद्धिवाद और कर्म-संघर्ष से श्रांत मनु को श्रद्धा ही शांति और आनन्द का मार्ग बताती है। वह मार्ग है इच्छा (हृदय), ज्ञान (बुद्धि) और कर्म (इन्द्रियों की स्वाभाविक वृत्ति) का समन्वय। मनु इस इच्छा-ज्ञान-कर्म समन्वित कर्म मार्ग को स्वयं ग्रहण नहीं करते। वे तो केवल श्रद्धा की उँगली पकड़-पकड़ कर ही आनन्दलोक की प्राप्ति कर लेते हैं। परंतु केवल श्रद्धा के सहारे जीवन की पूर्णता प्राप्त करने वाला कोई गांधी विरला ही मिलेगा। साधारण मानव (मनु-पुत्र) के लिए तो वह इच्छा-ज्ञान-कर्म समन्वित सेवा-मार्ग ही उपादेय है जिसकी ओर श्रद्धा ने इंगित किया है।

इसी तरह मधुचर्या, रहस्य या आनन्दवाद को भी कोई बड़ी लांछना नहीं कहा जा सकता। व्यक्तिगत सुख की खोज रहस्यमयी होती है। यह सामूहिक सामाजिक सुख की साधना तो है नहीं। इसी से इसमें रहस्य और मधुचर्या को भी स्थान मिला है। शैवागमों और तांत्रिक सिद्धांतों का आभार कामायनी पर अवश्य है। प्रसाद स्वयं शैव थे और तांत्रिक ग्रन्थों का उनका अध्ययन विशाल था। कामायनी के 'रहस्य' और 'आनन्द' सर्गों को शैवागमों और तांत्रिकों की पदावली और उनके पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग मिलता है। परन्तु तांत्रिक या रहस्यवादी हो जाने से ही कोई विचारधारा लांछित नहीं हो पाती।

वास्तव में कामायनी में प्रसाद ने मानव-मन के पुनर्निर्माण की चेष्टा की है। उन्होंने मनुष्य की मूल अन्तर्वृत्तियों के उद्घाटन का प्रयत्न किया है। मनोवैज्ञानिक इस प्रयत्न से परिचित थे परन्तु काव्य

के क्षेत्र में यह नया प्रयोग है और नया प्रयोग होने के कारण स्तुत्य है। जीवन की मूल अन्तर्वृत्तियों को लेकर उनके सहारे एक उदात्त जीवन-दर्शन का निर्माण कामायनी की विशेषता है। हो सकता है, जीवन-दर्शन के रूप में इस प्रयत्न में अधिक मौलिकता न हो और यह सर्वग्राह्य न बन सके, परन्तु इस जीवन-दर्शन ने कामायनी के काव्यतत्त्व को बहुत ऊँचा उठा दिया है, इसमें कोई संदेह नहीं।

परन्तु हम कामायनी को दर्शनचिंता के रूप में ही क्यों देखें! क्यों हम उसे श्रेष्ठ श्रव्य-काव्य के प्राकृतिक रूप में प्रतिष्ठित न करें? स्वयं कवि ने इसे रूपकात्मक श्रव्य-काव्य के रूप में ही देखा। कामायनी की भूमिका (आमुख) में वह कहता है—"यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्षों (हृदय और मस्तिष्क) का सम्बंध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है। श्रद्धां हृदयां काकूत्मा श्रद्धया विन्दते वसु। (ऋग्वेद १०—१५१—४)। इन्हीं सब के आधार पर 'कामायनी' की कथा-सृष्टि हुई है।" इससे स्पष्ट है कि प्रसाद कामायनी को मूलतः ऐतिहासिक कथा-सृष्टि मानते हैं और गौण रूप से रूपक। इससे अधिक की ओर उनका आग्रह नहीं है। उन्होंने आधुनिक हिंदी श्रव्य-काव्य की दुर्व्यवस्था देखी और युग के अनुरूप उसे अपनी प्रौढ़ शक्तियों से पुष्ट किया। वे लिखते हैं—"हिंदी के इस पाठ्य या श्रव्य-काव्य में ठीक वही अव्यवस्था है, जैसी हमारे सामाजिक जीवन में विगत कई सौ वर्षों से होती रही है। रसात्मकता नहीं, परंतु रसाभास ही होता रहा। यद्यपि भक्ति को भी इन्हीं लोगों ने मुख्य रस बना लिया था, किंतु उसमें व्यंजना से वासना की बात कहने के कारण वह दृढ़ प्रभाव जमाने में असमर्थ थी। क्षणिक भाववेश हो सकता था। जगत्

और अन्तरात्मा की अभिन्नता की विवृत्ति उसमें नहीं मिलेगी । एक तरह से हिंदी काव्यों का यह युग संदिग्ध और अनिश्चित सा है। इसमें न पौराणिक काल की महत्ता है और न है काव्य-कला का सौन्दर्य।" इस अव्यवस्था के बाद प्रसाद ने कामायनी की योजना की। उन्होंने आधुनिक युग की चिंता के अनुरूप ही एक महाकाव्य हमें दिया। उसमें जो विशृंखलता है, वह हमारे अपने युग की प्रकृति के कारण है। प्रसाद कुछ पश्चिमी महाकाव्यों की नक़ल करने नहीं चले हैं। पूर्व के महाकाव्य की परम्परा से तो कामायनी भिन्न ही है। कामायनी के लिए उन्होंने अपनी शैली आप खोज निकाली। प्रबोध चंद्रोदय जैसे प्राचीन नाटक और स्वयं उनका 'कामना' नाटक उनके सामने थे, परन्तु जहाँ तक काव्य-शैली और सौन्दर्य-स्थापन का सम्बन्ध है, उनसे कोई सहायता नहीं मिल सकती थी। उन्होंने मंतव्य-विषय को दृष्टि में रखकर कामायनी की शैली का निर्माण किया। महाकाव्य के केवल कुछ तत्त्व उन्होंने ग्रहण करे—उसकी सर्गबद्धता और प्रत्येक सर्ग में छंद-भेद। इसके अतिरिक्त इस आधुनिक महाकाव्य और प्राचीन महाकाव्यों में कोई भी साम्य नहीं है।

आधुनिक युग के दो महत्वपूर्ण महाकाव्यों साकेत और कामायनी के तुलनात्मक अध्ययन से प्रसाद की प्रगतिशीलता की बात और भी अच्छी तरह समझ में आ सकती है। साकेत को प्राचीन महाकाव्यों को दृष्टि में रख कर गढ़ा गया है। हाँ, कुछ नाटकीयता का प्रभाव अवश्य है। सारी कथा को अयोध्या तक ही सीमित करने की चेष्टा की गई और इसी से उत्तर रामकथा हनुमान के मुँह से सुनाई गई है। इससे कथा-वस्तु में चाहे जो मौलिकता आ गई हो, काव्य-तत्त्व का ह्रास ही हुआ है। ऊर्मिला का स्वच्छंद प्रलाप ही साकेत की विशेषता है। आधुनिक छायावादी प्रगीतों का एक बृहद सर्ग उस नवें सर्ग को समझना चाहिये जिसमें ऊर्मिला की वियोग-दशा को चित्रित किया गया है। परन्तु काव्यगत अभिव्यंजना और शैली की दृष्टि से यह

रचना मैथिलीशरण गुप्त की अन्य रचनाओं की भाँति क्लासिकल (पौराणिक) ही है। स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव केवल इतना ही है कि उसमें एक उपेक्षा नारी-पात्र को नायिका बनाया गया है। इसमें भी पथ-प्रदर्शन रवीन्द्रबाबू का है। परन्तु प्रसाद की कामायनी के संबंध में बहुत कुछ कहा जा सकता है। वह आदि से अन्त तक स्वच्छंदतावाद (Romanticism) की शैलियों और विचारधारा से प्रभावित हैं। उसमें कथावस्तु बहुत कम है, जो है उस पर भी रूपक का आरोप है। किसी उदात्त नायक की कल्पना उसमें नहीं है। 'कर्मभूमि' के नायक अमरकांत की तरह मनु भी दुर्बल-चरित्र नायक हैं। श्रद्धा ही उन्हें आनन्द और शांति का मार्ग बताती है। नारीत्व का नायकत्व स्वच्छंदतावादियों की ही सूझ है। भावप्रकाशन की शैलियों की दृष्टि से तो उसमें थोड़ी भी पौराणिकता नहीं है। जिस शैली का प्रारंभिक प्रौढ़ रूप हमें 'आँसू' (१९२६) में मिलता है, उसी का प्रौढ़तम रूप प्रसाद की 'कामायनी' है। केवल इसी एक ग्रन्थ से हमें छायावाद-काव्य की सारी दुर्बलताओं और उसकी सारी शक्तियों का परिज्ञान हो जाता है।

जैसा हम पहले बता चुके हैं कामायनी के दो पक्ष हैं—१ जीवन-दर्शन और २ साहित्य। काव्य की परिपाटी में साहित्य के भीतर से जीवन-दर्शन मिलना चाहिये। बुद्ध की तरह मनु को साधना में तपा कर प्रसाद एक विशिष्ट जीवनदर्शन का निर्माण कर सकते थे। साहित्य के दृष्टिकोण से यह अधिक अच्छा होता। प्रसाद ने इसके विपरीत जीवनदर्शन को साहित्य का रूप देना चाहा है और यद्यपि वे इसमें सफल हुए हैं, इसमें संदेह नहीं कि साहित्यपक्ष की हानि भी कम नहीं हुई है। पात्रों और परिस्थितियों के भीतर से आया हुआ जीवन-दर्शन हृदय के भीतर बैठ जाता है। इकेला तत्त्व-चिन्तन बुद्धि की उधेड़बुन मात्र है। दर्शन का लक्ष्य है सत्य। स्वयं प्रसाद के शब्दों में, सत्य को किसने जाना है? वह तो मेधा के क्रीड़ा-पिंजर का

हुआ है। मेधा ने जैसा चाहा, कहला लिया। इसमें श्रेय की बात कैसी? इसी से कामायनी का दर्शन-चिन्तन महत्वपूर्ण होते हुए भी महत्वपूर्ण नहीं है। प्रमुख है उसका साहित्य-रूप। जिस कला से आकाशचारी दर्शन-चिंतन को प्रसाद ने काव्य की प्रकृत भूमि पर उतारा है, वह नितान्त अभिनव है, काव्य के क्षेत्र में एकदम नई चीज़ है और अगली पीढ़ी इस काव्य को काव्य-साहित्य में प्रकाश-स्तम्भ मानेगी।

आधुनिक हिन्दी काव्य के पिछले तीस वर्ष उतने ही क्रांतिकारी हैं जितने राजनीति के। इन तीस वर्षों में पराधीन भारत कई सौ वर्षों की दासता की बेड़ियाँ तोड़ कर स्वतंत्र हो सका है। आधुनिक काव्य के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। १९१८ से पहले के हिन्दी काव्य में परम्परा और शास्त्र की न जाने कितनी शृङ्खलाएँ थीं। कवि उनसे बँधा हुआ था। स्वतंत्र चेतना का नाम नहीं था। भाषा इतनी गद्यमय थी कि हृदय का स्पंदन ही उसमें प्रगट नहीं किया जा सकता था। जड़ता और इतिवृत्तात्मकता का राज था। पौराणिक चरित्रों के अतिरिक्त और किसी उदात्त विषय की कल्पना भी नहीं हो सकती थी। राम, कृष्ण, बुद्ध—यही काव्य के सर्वश्रेष्ठ विषय थे। प्रकृति-वर्णन में भी जीवन का स्पंदन नहीं था। केवल वस्तु-परिगणन मात्र को काव्य कह दिया जाता था। कुछ कवि रीतिकाव्य की साहित्यिक परम्पराओं का परिपालन करते जा रहे थे। कुछ अन्य कवि रीतिकाव्य के विरोध में नये काव्य की रचना कर रहे थे, परन्तु इस प्रतिक्रिया के फलस्वरूप नारी का सौन्दर्य, नर-नारी का प्रकृत प्रेम, कल्पना और कला का विलास उनके लिए वर्जित था। ऐसे समय में 'इन्दु' (१९०९—१६) की स्थापना हुई। 'इन्दु' के अंकों में पहले-पहल प्रसाद ने प्रकृति-सम्बन्धी नई कविताएँ प्रकाशित कराईं और धीरे-धीरे शैली और छन्दों के अनेक प्रयोग किये। रीतिकाव्य की वासनात्मक परम्परा और द्विवेदी युग की जड़ इतिवृत्तात्मकता के विरोध

में उन्होंने एक सप्राण, संयमित शैली का आविष्कार किया। 'आँसू' में यह शैली पहली बार लोकप्रिय हुई। पौराणिक पुरुष और सामाजिक समस्याएँ ही काव्य के विषय नहीं रहे। मानव-मन की मनोहरतम कल्पनाओं, अन्यतम उलझनों और जीव-ब्रह्म-प्रकृति के अनेक भाविक सम्बन्धों का प्रकाश छायावाद काव्य का विषय बना। 'आँसू' (१९२६) से 'कामायनी' (१९३६) तक इस काव्य को अनेक मंज़िलें पार करनी पड़ीं।

'कामायनी' (१९३६) में 'आँसू' से 'कामायनी' तक की सारी काव्य-साधना प्रतिबिंबित है। इसका कारण यह है कि बराबर दस वर्षों तक कामायनी की रचना होती रही और कवि अपने स्वभाव के अनुसार बराबर छन्दों में कतर-बयौंत करते रहे। मुक्तक के रूप में समय-समय पर रची गई बहुत सी सामग्री भी सहज ही में कामायनी का अंग बन गई है, यह भी जान पड़ता है। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि इस एक ग्रन्थ में पिछले तीस वर्षों की काव्य-साधना का बहुत बड़ा अंश आ जाता है। आज भी यह काव्य अनूदित होकर अन्य भाषाओं में आदर पा सकता है। सर्वत्र एक समान उसका आदर होगा, यह भी निश्चय है। इसका कारण यह है कि प्रसाद ने अपने प्रतीकों को युग के अनुसार गढ़ा है। देश-काल की परिधि से वे बँधे नहीं हैं। मनु, श्रद्धा और इड़ा के प्रतीक संसार के प्रत्येक देश में समझे जा सकेंगे, राम-कृष्ण के सम्बन्ध में यह बात नहीं कहीं जा सकती। इसी से हम कहते हैं कि अपनी सीमाओं के भीतर जयशंकर प्रसाद की कामायनी इस युग के हिन्दी काव्य की सब से बड़ी देन है। वह केवल हिन्दू जनता की चीज़ नहीं है, वह मानव मात्र की चीज़ है। देश-काल की सीमा का अतिक्रम कर तत्त्वचिन्तन और साहित्य का विचक्षण गठबंधन करने वाली प्रसाद की प्रतिभा सचमुच अभिनंदनीय है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास

हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन

हिन्दी साहित्य में भारत के मध्य प्रदेश की जनता की लगभग १२०० वर्षों की चिंताधाराओं, भावनाओं, धर्म, संस्कृति और आशाकांक्षाओं का ऐसा बड़ा सङ्कलन है जो काल के सर्वभक्षी मुख से बच कर आज हम तक पहुँच सका है। मध्यदेश भारत राष्ट्र का हृदय है। आज से नहीं, आर्यों के समय से। वैदिक काल से राजपूत काल तक आर्यों की सारी चिन्तनाओं से हिन्दी साहित्य प्रभावित है, और आज की उत्तरी भारत की अन्य भाषाओं की अपेक्षा वह संस्कृत साहित्य का उत्तराधिकार अधिक मात्रा में प्राप्त कर सका है। इसी से स्वतंत्र भारत के लिए इस साहित्य का बड़ा महत्त्व है।

परन्तु हिन्दी साहित्य में केवल संस्कृत की साहित्यिक धाराओं की परम्परा ही सुरक्षित नहीं है, उसमें स्वतंत्र रूप से नया भी बहुत कुछ है। गोरखनाथ से लेकर आधुनिक युग के राधा-स्वामी सम्प्रदायों तक भारत में एक विराट धार्मिक समन्वय, एक महान सांस्कृतिक ऐक्य की स्थापना की एक परम्परा चलती रही है। गोरखनाथ, कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, दादू, रज्जब और अनेकानेक भक्तों, सन्तों, गोरखपंथियों, सुफ़ियों और निरंजनियों ने इस परम्परा में योग दिया है। दस शताब्दियों तक भारत के महान सांस्कृतिक नेताओं ने जो सोचा-समझा, जिसके प्रचार को अपने जीवन का ध्येय बनाया, जो जान कर अमरता प्राप्त की, वह आज हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। हिन्दी साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह केवल साहित्य नहीं है। धर्म, दर्शन, संस्कृति, जीवन-विज्ञान, नीति

और सङ्गीत की अनेक धाराएँ इस साहित्य का अविच्छिन्न अंग बन गई हैं।

इसी से हिन्दी साहित्य के इतिहासकार का उत्तरदायित्व बड़ा कठिन हो जाता है। विभिन्न विचार-धाराओं और विरोधी भावनाओं को निर्विकार भाव से समेट कर उसे चलना होता है। अनेक महान कवियों और लेखकों का ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन उसे देना होता है, परन्तु सबसे अधिक कठिन कार्य है युगों-युगों की पुरानी अंतस्साधनाओं को पुनर्जीवित करना और उनके नेताओं के व्यक्तित्व का पुनर्निर्माण। केवल 'इतिहास' उसे नहीं देना है, उसे १२०० वर्षों को जनता और उसके नेताओं को जीवन देना है।

भटनागर जी का यह इतिहास इस नए दृष्टिकोण को सामने लाता है। डा० श्यामसुन्दरदास और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास अपनी-अपनी जगह पूर्ण हैं, परन्तु पिछले पन्द्रह-सोलह वर्षों में साहित्य-सम्बन्धी अनेक नई खोजें हुई हैं जिन्होंने नई धाराओं का सूत्रपात किया है और हमें नई अंतर्दृष्टि दी है। इन पिछले वर्षों में जिस साहित्य का निर्माण हुआ है, वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। फिर वस्तु-विवेचन का ढंग भी अधिक वैज्ञानिक और अधिक सतर्क हो गया है। 'हिन्दी साहित्य : एक अध्ययन' में पहली बार कटे-छँटे वैज्ञानिक ढंग से हिन्दी साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का विश्लेषण और संश्लेषण उपस्थित किया गया है।

हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों, प्रेमियों और खोजियों को हमारी यह नई भेंट प्रिय होगी, इसमें हमें किंचित भी सन्देह नहीं है।

मूल्य ४॥)

किताब महल : प्रकाशक : इलाहाबाद

का मा य नी

"कामायनी" में प्रसाद ने शाश्वत मानवता के विकास का
उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। सार्वभौम कल्याण-भाव
प्रेरित हो वह देश-काल-वर्गहारा मानव के लिए एक नई स
नई संस्कृति, नये दर्शन का संकेत देने चले हैं। जीवन का मै
अन्वेषण और विश्लेषण कामायनी की सबसे बड़ी देन है।
मानसिक तत्त्वों के सूत्रों को समेट बटोर कर भावी मान
मंगलसूत्र में गूँथ दिया गया है। चिंता, आशा, ईर्ष्या, क्षमा
मनोभाव मानस को जिस विकासपथ पर त्रिकाल तक आगे ब
रहेंगे, 'कामायनी' में उन्हीं की सुन्दरतम व्याख्या है। यह सम्भव
कि 'कामायनी' रामचरितमानस की भाँति जन-साधारण की
हो सके। परन्तु केवल इसी एक बात से वह छोटी नहीं हो जाती

जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि अपने युग के अनुरूप 'कामा
एक सुन्दर रचना है। वह हमारी साधना को एक नया
बताती है और एक नये जीवन सन्देश से हमें स्पंदित करती है

मूल्य २॥)

किताब-महल * प्रकाशक * इलाहाबा

Only Cover printed at the Krishna Press, Allahabad